सद्भाव-सेतु शङ्कर

(आदि शङ्कर पर प्रस्तुत महाकाव्य)



अर्जुन तिवारी

'सद्भाव-सेतु शङ्कर' श्रीमद् आदि शंकराचार्य को नायक बनाकर प्रणीत हिन्दी का सम्भवतः पहला प्रबन्ध काव्य है। उपन्यास तो कई लिखे गये हैं जिनमें से दो मैं पढ़ चुका हूँ। श्री जनार्दन जी का और श्री दशरथ ओझा का। इस काव्य में विश्व के आश्चर्य पुरुष आचार्य शंकर की जीवन-यात्रा का वर्णन है। इनकी जीवन-यात्रा वस्तुतः वर्तमान भारत के नव-रचना का इतिहास है। यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि सांस्कृतिक दृष्टि से भारत एक है जिसकी सटीक पहचान आचार्य शंकर ने करायी। कुछ तो दार्शनिक स्तर पर अपने भाष्यों के द्वारा, कुछ भारत के चारों कोनों में पीठों की स्थापना के द्वारा, कुछ भिन्न-भिन्न साधना केन्द्रों में जाकर उनके पुनरुद्धार के द्वारा। उनका अद्वैत वेदान्त कोरा कागजी नहीं है। वह पूर्णतः व्यावहारिक भी है। इस महाकाव्य के प्रणेता डॉ. अर्जुन तिवारी ने सभी पक्षों को लेते हुए छन्दोबद्ध रचना प्रस्तुत की है। इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

इस ग्रन्थ में शंकर के उदात्त चरित्र का प्रसन्न और उदात्त भाषा में उत्तम चित्रण किया गया है। मैं विश्वास करता हूँ कि इस ग्रन्थ से एकता का मंत्र जगाने में सहायता मिलेगी।

– विद्यानिवास मिश्र

सद्भाव-सेतु शङ्कर

शंकर जीवन पूर्ण जो रहा स्वयं ही भव्य।
मानव-हित गाथा वही क्यों न बनें नित श्रव्य ?



डॉ. अर्जुन तिवारी

अध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सद्भाव-सेतु शङ्कर

प्रकाशक	नवशक्ति प्रकाशन जे० १३/२४ के०, चौकाघाट वाराणसी-२२१ ००२ (उ. प्र.) दूरभाष : २०२२३७
संस्करण	प्रथम, १९९९
	© डॉ. अर्जुन तिवारी
मूल्य	१००.०० रुपये मात्र (एक सौ रुपये मात्र)
मुद्रक	प्रभा प्रेस जे० १३/२४ के०, चौकाघाट वाराणसी-२२१ ००२ (उ. प्र.) दूरभाष : २०२२३७

SADBHAV SETU SHANKAR

(Good Will Incarnate : Shankar)

A Epic

by

Dr. Arjun Tiwari

1999

पावन परम्पराओं के प्रतिष्ठापक आचार्य शङ्कर

"...और इस बार प्राकट्य दक्षिण में हुआ। एक ब्राह्मण बालक उत्थित हुआ, जिसके विषय में कहा जाता है कि उसने सोलह वर्ष की आयु में अपना समस्त लेखनकार्य—भाष्यरचना आदि—सम्पूर्ण कर लिया था। यह असाधारण बालक शङ्कराचार्य थे। इस सोलह वर्षीय बालक द्वारा लिखे गये ग्रन्थ आधुनिक जगत् के लिए एक महान् आश्चर्य हैं, और ऐसा ही वह बालक था। उनकी अभिलाषा यही थी कि भारतवर्ष में पुरातन पावन परम्पराओं का पुन:स्थापन हो। विचार करने की बात है कि उस बालक के सम्मुख कितना महान् कार्य था।

...आचार्य शङ्कर एक महान् तत्त्वज्ञानी थे। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि बौद्धधर्म का सार तत्त्वत: वेदान्त दर्शन से भिन्न नहीं है। शङ्कर की सर्वोपरि गरिमा उनका गीता का प्रचार है। उस महापुरुष ने अपने उदात्त जीवन में अनेक महान् कार्य किये; किन्तु गीता का प्रचार और गीता पर उनका उत्कृष्ट भाष्य उनके सर्वोत्तम कार्यों में से हैं।

आचार्य शङ्कर ने वेदों के सनातन धर्म की पूर्ण रक्षा की। अनेक अनुयायी उन्हें शिव का अवतार मानते हैं...। तुम्हें शङ्कर का अनुसरण करना चाहिए।"

–स्वामी विवेकानन्द

शङ्कराचार्य : एक बहुमूल्य निधि

धर्म परम्परा, सामाजिक चिन्तन, साहित्य-निर्माण और इतिहास, इन सभी दृष्टियों से आदिगुरु शङ्कराचार्य की जीवनगाथा तथा उनकी कृतियाँ देशभर के लिए एक बहुमूल्य निधि हैं।

–राजेन्द्र प्रसाद

पूर्व राष्ट्रपति, भारत सरकार

SHANKARA : A builder of Unity among Diversity

"And yet Shankara was a man of amazing energy and vast activity. He was no escapist retiring into his shell or into a corner of the forest, seeking his own individual perfection and oblivious of what happened to others. Born in Malabar in the far South of India, he travelled incessantly all over India, meeting innumerable people, arguing, debating, reasoning, convincing and filling them with a part of his own passion and tremendous vitality. He was evidently a man who was intensely conscious of his mission, a man who looked upon the whole of India from Cape Comorin to the Himalayas as his field of action and as something that held together culturally and was infused by the same spirit, though this might take many external forms. He strove hard to synthesize the diverse currents that were troubling the mind of India of his day and to build a unity of outlook out of that diversity. In a brief life of thirty-two years he did the work of many long lives, and left such an impress of his powerful mind and rich personality on India that it is very evident today. He was a curious mixture of a philosopher and a scholar, and agnostic and a mystic, a poet and a saint, and in addition to all this, a practical reformer and an able organizer. He built up, for the first time within the Brahminical fold, ten religious orders and of these four are very alive today. He established four great mutts or monasteries, locating

them far from each other, almost at the four corners of India. One of these was in the South at SRINGERI in Mysore, another at PURI on the east coast, the third at DVARAKA in Kathiawad on the west coast, and the fourth at BADRINATH in the heart of the Himalayas. At the age of thirty-two this Brahmin from the tropical South died at Kedarnath in the upper snow-covered reaches of the Himalayas.

By locating his four great monasteries in the north, south, east and west, he evidently wanted to encourage the conception of a culturally united India. These four places had been previously places of pilgrimage from all parts of the country, and now became more so."

(Discovery of India)

—Jawahar Lal Nehru

सदाशंसा

श्री अर्जुन तिवारी के जगद्गुरु शङ्कराचार्य से सन्दर्भित 'सद्भाव-सेतु शङ्कर' से मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। हमारे देश के महापुरुषों पर जो महाकाव्य लिखे गये वे प्रायः पौराणिक वीरों पर ही अधिक लिखे गए, धर्मरक्षकों और दिग्गज विद्वानों पर किसी की दृष्टि नहीं गई। पहली बार यह काव्य देखकर सात्त्विक प्रसन्नता हुई।

हमारे देश के जिन अद्वितीय दार्शनिकों, विचक्षण विद्वानों और भ्रष्टाचार-पीड़ित जनता के त्राणकर्त्ताओं ने अपने चरित्र, वैदुष्य और जन-कल्याण-भावना से ख्याति और कीर्ति अर्जित की, उनमें जगद्गुरु आदि शङ्कराचार्य का मङ्गल नाम मूर्धिनगत है। वे केवल दार्शनिक, अद्वैतवाद के अग्रणी प्रवर्त्तक और उपनिषद्-भाष्यकार ही नहीं थे, उन्होंने अपने अपरिमेय वाग्वैदग्ध्य और पाण्डित्य से उन सभी नास्तिकों को पराजित करके वैदिक धर्म की स्थापना की, जिनके पापाचार से जनता अत्यन्त क्षुब्ध और त्रस्त थी। वास्तव में उनका जीवन और उनका कार्य काव्य का विषय बनने के सर्वथा योग्य है।

मैं श्री अर्जुन तिवारी को बहुत बहुत बधाई देता हूँ कि उन्होंने इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण किन्तु काव्योपेक्षित महापुरुष को अपने काव्य का विषय बनाने का अत्यन्त श्लाघनीय कार्य किया है।

–(आचार्य) सीताराम चतुर्वेदी

वाराणसी

सद्भावसेतुर्लोकानां शङ्करः सर्वशङ्करः ।
यस्याद्वैतमयी दृष्टिर्विश्रान्तर्भेदभेदिनी ।।

डॉ. अर्जुन तिवारी, अध्यक्ष, पत्रकारिता विभाग, महात्मा गांधी काशीविद्यापीठ (वाराणसी) द्वारा प्रणीत "सद्भाव-सेतु शङ्कर" शीर्षक शीर्षण्यभावसंवलित काव्य भगवत्पाद आदिशङ्कराचार्य के चरणाम्बुज युगल में प्रणति पुष्प स्वरूप समर्पित वस्तुतः एक अमूल्याङ्कनीय अनपायन सारस्वत उपायन के रूप में हिन्दी काव्य जगत् में अध्यात्म-चेतना की चारुतर पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया गया है। उक्त काव्य का प्रायः आद्यन्त अवलोकन आलोचन एवं यत्र तत्र शब्दाकलन मैंने किया है। श्री तिवारी जी पत्रकारिता के निदर्शनात्मक अध्यवसाय में संलग्न होकर भी काव्य के निगूढ़ उदात्त एवं सरस स्पन्दन के मर्मवेदी सुमनस् सुकवि हैं—यह इनके काव्य के प्रतिपद्य-परिशीलन से सहृदय सुधीजन को निश्चय ही प्रतीत होगा—यह मेरा सुदृढ़ विश्वास है। जैसा कि काव्य का नामकरण है—तदनुरूप आद्यन्त छन्दों में सद्भाव सेतु की सृष्टि करने में कवि पूर्णरूप से समर्थ होकर नाम-सार्थक प्रयत्न किया है। ऐसी रचनाओं की जिनसे राष्ट्रीय सद्भाव सहभाव एवं समभाव का उन्नयन हो सके, सम्प्रति नितान्त आवश्यकता है। ऐसी उत्कृष्ट काव्य- सर्जना के लिये मैं डॉ. तिवारी का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। यह अखण्ड रूप खण्ड-काव्य सचेतस् सुधी-समाज में अवश्य ही स्पृहणीय होगा ऐसा मेरा आन्तरिक सम्प्रत्यय है।

वि. सं. २०५६
अधिक ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया
दिनांक : १८-५-१९९९ ई.

— शिवजी उपाध्याय
अध्यक्ष-साहित्य विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

अद्वैतमत के प्रवर्तक, जीवब्रह्मैक्य के प्रतिपादक, प्रस्थानत्रयी (ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीता एवं उपषिद्) के भाष्यकार, अनेक ललित स्तोत्रग्रन्थों तथा प्रकरणग्रन्थों के रचयिता एवं सम्पूर्ण भारत की दिग्विजय यात्रा कर देश की चारों दिशाओं में चार पीठों की स्थापना के द्वारा राष्ट्रीय एकता के प्रक्रान्ता आचार्य शङ्कर का चरित तथा कर्तृत्व निश्चय ही जगद्विलक्षण एवं महनीय है। उनके बहु-आयामी व्यक्तित्व, अलोकसामान्य वैदुष्य, अप्रतिम कवित्व तथा अनितरसाधारण उपासनानिष्ठा ने भारतीय सनातन संस्कृति के समुद्धार तथा संरक्षण के द्वारा जनमानस में जो सद्भाव का सञ्चार किया है, उसके लिये उनका यश प्रलयपर्यन्त अक्षुण्ण रहेगा, वे सदा अविस्मरणीय एवं पूज्य रहेंगें। उनका दर्शन (अद्वैत दर्शन) न केवल भारतीय दार्शनिक वाङ्मय का अपितु विश्वदर्शन का मुकुटमणि है, जो विश्वमनीषा की विभिन्न विचारवीथियों को अपनी मनोहारी प्रभा से आलोकित करता है।

ऐसे पुराण-पुरुष के व्यक्तित्व के सभी पक्षों को समेटते हुए काव्य-रचना करना एक दुरूह एवं प्रतिभासाध्य कार्य है। मेरे सहाध्यायी सुहृद् डॉ. अर्जुन तिवारी नें ग्यारह सर्गों में निबद्ध एक काव्य का प्रणयन कर बहुत ही श्लाघनीय कार्य किया है। इन्होंने आचार्य चरण के जीवन के विविध पक्षों को पृथक् पृथक् सर्ग में चित्रित कर एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति की है। गैं डॉ. तिवारी को और उनकी काव्यविषयिणी सर्जनशीलता को बहुत पहले से जानता हूँ। समय-समय पर प्रकाशित उनकी रचनाओं को देखने और पढ़ने का अवसर मुझे मिला है। प्रस्तुत काव्य को साद्यन्त अवलोकन कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, कि इस काव्य से साहित्य तथा समाज दोनों का प्रभूत कल्याण होगा। बीसवीं सदी के अन्त में रचा गया यह काव्य जो नवम शती के एक महापुरुष के उदात्त चरित को चित्रित करता है, अगली सदी (इक्कीसवीं) के दिग्भ्रान्त समाज के लिये पथप्रदर्शक सिद्ध होगा।

मुझे पूरा विश्वास है, कि यह काव्य सुधी पाठकों के हृदय में समादर को प्राप्त होगा तथा इसके माध्यम से जन-जन में परस्पर सौहार्दपूर्ण सद्भाव का सृजन होगा। डॉ. तिवारी ऐसे ही अपनी नई-नई काव्यकृतियों से समाज की सारस्वत-सपर्या करते रहें यही माँ भारती से मेरी अभ्यर्थना है। 'संसेव्यतां काव्यमिदं सुधीभिः' की शुभाशंसा के साथ—

वि. सं. २०५६
गङ्गा दशहरा
दिनांक : २४-५-१९९९ ई.

—कपिल देव पाण्डेय
सम्पादक 'सूर्योदयः'

प्रकाशकीय

कवि अतीत का गौरव-गायक, वर्तमान का चित्रकार तथा भविष्य का द्रष्टा होता है, जिसकी रचना निराशा में आशा, आँसू में मुस्कान और अँधेरे में ज्योति छिटकाती है। यह तथ्य 'सद्भाव-सेतु शङ्कर' से स्वत: सत्यापित है। गरिमा पुञ्ज जगद्गुरु शङ्कराचार्य के जीवन के विविध पक्षों का मनोरम काव्य चित्र उपस्थापित कर डॉ. अर्जुन तिवारी ने समाज में व्याप्त वर्ग-वर्ण-विद्वेष, स्वार्थ, आडम्बर पर प्रहार किया है तथा सद्भाव संचार के सूत्रों का निदर्शन किया है।

दिग्भ्रमित समाज में शङ्कर का आविर्भाव, गुरुकुल परम्परानुसार भिक्षाटन के क्रम में धनपशुओं पर उनका प्रहार, शङ्कर-श्वपच-संवाद द्वारा जातिगत विद्वेष का दमन, गुरु-शिष्य-शास्त्रार्थ द्वारा विविध रहस्योद्घाटन, माता के प्रति दायित्व-निर्वहन, शिष्य की हित-चिन्ता के प्रति गुरु का समर्पण भाव, मानव-जीवन का आदर्श स्वरूप, भारत-गौरव-गान और आचार्य शङ्कर के तिरोधान जैसे प्रकरणों की सामयिक सरस प्रस्तुति रोचक एवं मार्मिक है। कवि डॉ. तिवारी ने प्रत्येक पुष्प में कुछ ऐसी मन्त्रवत् बातें कह दी हैं जो २१वीं सदी के लिए उद्धरणीय होंगी।

प्रस्तुत प्रबंध काव्य को पढ़कर पाठकगण राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त एवं जयशंकर प्रसाद जैसे यशस्वी साहित्यकार के ग्रन्थों के अवगाहन का आनन्द उठा सकते हैं। उत्कृष्ट विषय-वस्तु को अप्रतिम शैली में प्रस्तुत कर डॉ. तिवारी ने एक ओर जहाँ हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है वहीं दूसरी ओर इन्होंने सङ्कटापन्न राष्ट्र में साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रसार का ऐतिहासिक कार्य सम्पादित किया है जो काशी की गरिमा के अनुरूप है।

नवशक्ति प्रकाशन ने भारतीय संस्कृति और संस्कृत के प्रति समर्पित भारतीय संस्कृति के क्रान्तिकारी उन्नायक शङ्कराचार्य के चरित्र को वर्तमान सम-सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप व्याख्यायित करने में पूर्ण सक्षम डॉ. तिवारी की इस कृति का प्रकाशन कर अपनी नई, किन्तु मूल विधा का ही पोषण किया है।

–लोकेश कृष्ण त्रिपाठी

सद्भाव-कामना

"आपके विचार से शङ्कराचार्य ने अपने समय के विभिन्न धामिंक और राजनैतिक वर्गों को बिना एक बूंद रक्तपात किए, किस प्रकार एकता के सूत्र में ग्रथित कर दिया"? युगपुरुष नेहरू से पूछे गए परशियन दार्शनिक के इस प्रश्न से सुस्पष्ट है कि इतिहास में शङ्कराचार्य एकता के देवदूत हुए जिनकी अन्तर्दृष्टि, विद्वत्ता एवं संगठन-शक्ति के कारण भारत विश्व में तेजोदीप्त हुआ। वस्तुतः अपने यहाँ भगवान् कृष्ण के बाद राष्ट्र की मूलभूत एकता को व्यावहारिक स्वरूप देने वाले आचार्य शङ्कर ही हुए जिन्होंने एकदेशीयता, सङ्कीर्णता, दुर्बलता, मत-मतान्तर, बाह्याडम्बरों में फँसी भारतीय जनता को ज्ञानालोक से देदीप्यमान किया। वैदिक, बौद्ध, शैव, जैन, कापालिक आदि ७२ सम्प्रदायों में विभक्त राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने वाले अखण्ड भारत के संस्थापक आचार्य शङ्कर साम्प्रदायिक सद्भाव के सुपुष्ट सेतु हैं जो सत्संगति, सद्भाव, सत्कर्म की मानवतावादी नींव पर आधृत है।

विध्वस्त, श्रीहत राष्ट्र को वही गौरवान्वित कर सकता है जिसमें ज्ञान हो, ज्ञान के साथ पाण्डित्य हो, पाण्डित्य के साथ आचार्यत्व हो, दीक्षा देने और प्रेरित करने की क्षमता हो। आचार्यत्व के साथ गुरुत्व अपरिहार्य है। आचार्य ही जब शब्द ज्ञान से आगे साक्षात्कार भी कराने का गुर जानता है तो वह गुरु होता है। गुरु से भी आगे वह देवत्व प्राप्त करता है। शङ्कर नाम के पहले जगत्गुरु और अन्त में आचार्य का सम्बोधन है, जिससे स्वतः सिद्ध है कि वे मात्र दार्शनिक और विवेचक के रूप में एक आचार्य ही नहीं थे अपितु एक अनुपमेय गुरु थे और गुरु से भी बढ़कर एक अप्रतिम ब्रह्मोपासक थे। वेदों, उपनिषदों की दुर्लभ और सुबोध व्याख्या, वेद सूत्र, ब्रह्म सूत्र की प्रामाणिकता की प्रतिष्ठा, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत की एकात्मकता की उद्घोषणा द्वारा शङ्कर ने युग प्रवर्तक का कार्य किया और वे जगत् गुरु हो गये। उनके वर्चस्व से गाँव नगर सब "एक ब्रह्म—एक सत्य", "तत्वमसि", "जीवोब्रह्मैव नापरः", "नेहनानास्ति किञ्चन", "एकमेवाद्वितीयम्" की अखण्ड एकता में बँध गये। शङ्कर राष्ट्रीय एकता के समर्पित सेवक थे, जिनके कारण जीवन धर्मसम्पृक्त हुआ, जन-जन में समता, मैत्री, सद्भाव, सौहार्द की स्थापना हुई। ज्ञान, भक्ति, कर्म के सङ्गम

आचार्य शङ्कर के कारण ही हम भारतवासी "अमृतस्य पुत्रा:" के प्रतीक बन चुके हैं।

महान् विभूतियों की जीवन लीला भारतीय संस्कृति के हृदय का ही दर्शन कराती हैं—

युग-युग के सञ्चित संस्कार ऋषि-मुनियों के उच्च विचार।
धीरों-वीरों के व्यवहार है निज संस्कृति के शृङ्गार।।

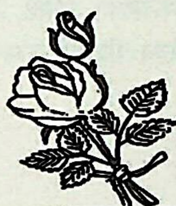
महापुरुषों का स्मरण प्राणद है और उनका विस्मरण घातक है। धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज, वेदान्ती स्वामी एवं योगेश्वर देवराहा बाबा के कृपापात्र शिष्य के रूप में मैंने यह थाती प्राप्त की कि आचार्य शङ्कर का भास्वर स्वरूप सार्वभौम धर्म का दिग्दर्शनकारी आलोक स्तम्भ है। उनका अगाध पाण्डित्य, असाधारण शास्त्र व्याख्यान कौशल, उनकी अद्भुत संगठन शक्ति मानव-मानव हेतु प्रेरणापुञ्ज है। ऐसे ही सत्यानुरागी, यती, शान्ति-सद्भाव के प्रतिष्ठापक के चरणों में मेरी यह विनीत काव्य पुष्पाजञ्जलि है जिसके मूल में स्व. विश्वरूप त्रिपाठी, पं. महावीर त्रिपाठी, मातादीन शर्मा, यादव चन्द्र पाण्डेय, विजयानन्द पाण्डेय, अक्षयवर दीक्षित की अहैतुकी कृपा है।

काशी के यशस्वी साहित्य साधकों में सर्वश्री प्रो. शिवजी उपाध्याय, डॉ. परमहंस मिश्र, डॉ. कपिलदेव पाण्डेय, ज्योतिर्विद् पं. मृत्युञ्जय त्रिपाठी, प्रो. गयाराम पाण्डेय, डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी के प्रति मैं नतमस्तक हूँ, जिन्होंने पाण्डुलिपि के संशोधन परिवर्द्धन द्वारा मेरा मनोबल बढ़ाया। नवशक्ति प्रकाशन, चौकाघाट ने अपने गाँठ का पैसा गवाँकर काशी की गरिमा के अनुरूप सद्भाव प्रसार हेतु जो अनुकरणीय कार्य किया है, वह सतत प्रशंसनीय है।

"भिन्नताया: फलं तुच्छं एकताया: बलं बलम्" के प्रतिष्ठापक जगत् गुरु शङ्कर के व्यक्तित्व कृतित्व का चिन्तन-मनन साम्प्रतिक समस्त सङ्घर्षों को दूर कर पुन: इस धरा पर साम्प्रदायिक सद्भाव अङ्कुरित कर सके, सब में विश्व-बन्धुत्व की पूत-भावना भर सके तो यही मेरी लेखनी की सार्थकता होगी।

आवास :
के. वी. ई.-५
काशी विद्यापीठ परिसर
वाराणसी
फोन : ०५४२-२२२३७५

डॉ. अर्जुन तिवारी
अध्यक्ष
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी



प्रथम पुष्प — १

सन्दर्भ-स्वर

वेदान्त, दर्शन, धर्म एकाकार हो बसते जहाँ।
सद्ज्ञान, भक्ति, सुकर्म की पावन त्रिवेणी है कहाँ ?
आचार्य शङ्कर मूर्त्ति जिनसे दीप्त संस्कृति-पंथ है।
श्रद्धेय चरणों पर समर्पित पुष्प सम यह ग्रंथ है॥

आराध्य श्रीमद्‌जगद्गुरु का चरित अनुकरणीय है।
करुणा, अहिंसा, सत्य, समता, प्रेम, हित वरणीय है॥
हों दूर जन-मन क्षोभ हिंसा ग्रंथ के नित गान से।
सुलझें समस्याएँ जगत् की यदि विचारें ध्यान से॥

मानस-कलुष को विमल करते पूज्यवर आचार्य हैं।
संस्कृति-सनातन मूल्य को उत्कर्ष देते आर्य हैं॥
मंगल-विधायक तत्त्व के शुभ-स्रोत को निज जानिए।
आलोकमय सद्वृत्ति के अवलम्ब को पहचानिए॥

आचार्य के अद्वैत की अनुगूँज से ईर्ष्या मिटी।
मैत्री बढ़ी, सद्भाव पनपा, कालिमा मन की छँटी।।
मानव-कला-उत्थान-हित जीते रहे हैं जो यहाँ।
उनके सदृश नर-रत्न मिलते इस धरा पर अब कहाँ?

जनतंत्र, उत्तम कब बने आचार्य यह बतला रहे।
हर व्यक्ति पूर्ण स्वतन्त्र हो यदि धर्म पर चलता रहे।।
दायित्व की प्रज्ञा जगाता विश्व में सद्धर्म है।
सहयोग, पर-उपकार, सेवा-भाव उसका मर्म है।।

परिवेश, जाति, स्वदेश का सत्चित्र ही साहित्य है।
जग का तमस भागे उसी से स्वयं वह आदित्य है।।
संस्कृति समुद्धारक सुरचना से सुगंधित हो मही।
अक्षय सुधा-सागर वही थाती बने अपनी यही।।

सामान्य जन-गुण-गान सुन सिर पीटती है शारदा।
मूर्धन्य मेधा चरित-चर्चा में मगन रहती सदा।।
शुभ शक्ति, विमल विचार पावें जब पढ़े आचार्य को।
पौर्वात्य शिव-सङ्कल्प के विग्रह स्वयं हैं आर्य जो।।

हाँ, सत्य तो द्युतिमान होता पद्यमय जब गान हो।
आचार्य-जीवन-अंश प्रस्तुत स्तुत्य है जब ध्यान हो॥
उपदेश उनका प्राणियों हित, विधि-निषेध विधान है।
जो मनन के उपरान्त पावें शान्ति-सुख-सोपान है॥

तब और अब

सौन्दर्य-स्रष्टा सुकवि तो आलोक फैलाते रहे।
निज लेखनी से सर्वदा सौहार्द पनपाते रहे॥
पर आज सुषमा और प्रभु-महिमा विवेचन भी नहीं।
आराधना तो लोकहित पाई नहीं जाती कहीं॥

साहित्य उपवन में जहाँ पिक कूजता था सर्वदा।
पाते कुतर्कारण्य में सब काकध्वनि की सम्पदा॥
आगम-निगम का पाठ नाट्यम रास लीला थी जहाँ।
पाश्चात्य भोंड़ी नकल से भारत दबा पल-पल यहाँ॥

माँ शारदा की साधना से दूर रहते लोग हैं।
आस्था मिटी सद्ज्ञान से पाते बुरे फल भोग हैं॥
है राष्ट्रभाषा ललित पर दिखती न व्यापक रूप में।
साहित्य-संस्कृति सिसकती संकीर्णता के कूप में॥

सद्भावनामय गंध से साहित्य सुरभित था कभी।
विषवृक्ष से दुर्भावना-दुर्गंध आती है अभी ।।
अब सत्य शिव सुन्दर उपासक में हुआ भटकाव क्यों ?
चारण तथा चर्वण-कला ही काव्य का पर्याय क्यों ?

सांसद विधायक कुछ यहाँ सद्ग्रंथ कोसें शान से।
धारा सभाओं में फटे क्यों पृष्ठ ? हाँ, अज्ञान से ।।
जीवन रहित संस्कृति-सरोवर, छटपटाता मीन है।
सद्गति बनी है स्वप्न सी, मतिहीन, हम गतिहीन हैं ।।

कुत्सित विचारों को सजाकर कुछ प्रकाशक छापते।
वे अधम भाव प्रकाशनों से चरित सबका नापते ।।
सुकुमार भावुक युवक की रुचि हो रही कलुषित सदा।
वाणी हुई तो अटपटी, कुविचार ही है सम्पदा ।।

सुविचार सुप्त पड़ा हुआ, कुविचार करता क्रान्ति है।
अन्याय, अत्याचार पग-पग देव! यह क्यों भ्रान्ति है ।।
जब आर्ष ग्रन्थों से यहाँ खिलवाड़ होना बंद हो।
साहित्य श्री-सम्पन्न हो, सुधरें सभी सानन्द हो ।।

विज्ञान से सुविधा बढ़ी, मस्तिष्क विकृत हो गया।
गर्हित कुकर्मों से जगत अभिंशापमय देखा गया।।
मानव बना दानव, यहाँ है नाचता अभिमान में।
साक्षर बने राक्षस सभी मदमस्त हैं अज्ञान में।।

दिग्भ्रान्त, शांति-रहित मनुज-जीवन बना दुर्दान्त है।
जो पूज्य सतत् सुवंद्य थे, वे आज इतने क्लान्त हैं।।
असमय यहाँ अब मृत्यु होती काल सर पर चढ़ रहा।
अणु बम सरीखे क्रूर अस्त्रों का निशाना बन रहा।।

सोयुज अपोलो से अनावृत इतर लोकों पर चढ़े।
नवसभ्यता, शिक्षा, पराक्रम उच्च्च पथ पर भी बढ़े।।
सिर पीटती सारी व्यवस्था प्राप्त कैसे शान्ति हो?
शङ्कर-निदर्शन ज्योति छिटकाता जहाँ दिग्भ्रान्ति हो।।

सद्धर्म सुखमय स्रोत, संस्कृति-जलधि का शिव सेतु है।
उत्कर्ष उद्यम शान्ति का बनता यही शुभ हेतु है।।
दुःख दैन्य व्याधि विपत्ति होवे दूर इससे जान लें।
चारो पराक्रम-प्राप्ति से जीवन सफल हो मान लें।।

प्रख्यात चारों वेद मानव सभ्यता के स्रोत हैं।
भव-सिन्धु से उद्धार-हित सचमुच बने वे पोत हैं॥
उत्कृष्ट पावन पूज्य भावों से भरे सत् शास्त्र हैं।
इस लोक क्या, परलोक के बनते यही ब्रह्मास्त्र हैं॥

निज सभ्यता पर स्वाभिमानी, धर्मभीरु रहे सदा।
सत्कर्म, पर-उपकार हित होती हमारी सम्पदा॥
संयम, नियम, श्रम-साध्य विद्याबल सदा पाते रहे।
संसार का कल्याण हो, इस मंत्र को गाते रहे॥

पर आज इस ऋषि भूमि का कैसा हुआ यह हाल है ?
सब टूटते निज बंधु पर फैला विषमता-जाल है॥
गुरु-शिष्य का नाता नहीं, लिप्सा चतुर्दिक बढ़ रही।
माता-पिता प्रति आस्था जाने यहाँ क्यों घट रही ?

भगवान पर विश्वास घटता जा रहा इस सृष्टि से।
है नास्तिकों की बाढ़ आई भोगवादी दृष्टि से॥
भौतिक जगत का चाकचिक्य हुआ सभी को मान्य है।
'खाओ, पीओ, खुशियाँ मनाओ'—भाव यह सम्मान्य है॥

चार्वाक से जो मार्क्स तक दर्शन जगत उल्लेख्य है।
क्यों विश्व में उठता बवंडर अब न वह आलेख्य है॥
यदि काल से बाधित रहे तो वह न दर्शन मान्य है।
शाश्वत गुणों से युक्त ही सिद्धान्त जग सम्मान्य है॥

निद्रित पड़े हम भूल बैठे पूर्व गरिमा-मर्म को।
उत्साह रग-रग में भरें कर याद अपने धर्म को॥
उन पुण्य पुरुषों का सुचिन्तन चेतना-आधार हो।
मन-लोक का आलोक हो, जीवन-कला सम्भार हो॥

संदेश शङ्कर का सतत उत्कर्षदायी ही रहा।
विज्ञान-सम्मत, सत्य, शाश्वत रूप में सबने कहा॥
धर्मान्धता, सङ्कीर्णता के दोष पाएँगे नहीं।
चेतन बनाता व्यक्ति को समभाव सिखलाता यही॥

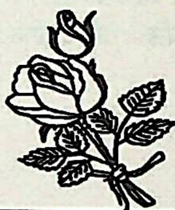
उपकार, सेवा-भाव से, निज स्वार्थ के परित्याग से।
अध्यात्म के उत्कर्ष से, प्रभु-चरण में अनुराग से॥
होगा भला इस जगत का वेदान्त यह बतला रहा।
उद्धार हित सन्मार्ग बस उपेदश शङ्कर का रहा॥

इस विश्व में फैला जहाँ जो भी विकास-प्रकाश है।
निश्चय समझ लें बन्धुगण, आचार्य का ही भास है॥
पथ पर चलें उनके सभी जीवन-जगत तो स्तुत्य हो।
सारी विवशताएँ मिटें, आनन्द वर्षा नित्य हो॥

आचार्य शङ्कर विश्ववंद्य उन्हें सभी क्यों भूलते?
कर्त्तव्य-पथ से विलग हो संशय-हिंडोला झूलते॥
पाकर कुसंगति क्यों गिरे मद-मोह-मत्सर कूप में।
आएँ, उन्हें अब याद कर लें दिव्य सुखद स्वरूप में॥

यदि कर्म-पथ अवरुद्ध हो, करता विवेक न काम हो।
उपेदश गुरुवर का हृदय में और प्रभु का नाम हो॥
सब भाँति बरसे सुधा जग में शुभ समन्वय की यहाँ।
शङ्कर जगद्गुरु पूज्य उनके स्वर प्रभावी हो यहाँ॥





द्वितीय पुष्प ２

साधना-सौन्दर्य

तप-तेज-पुञ्ज, भास्वर ललाट,
काषाय वसन, वपु दिव्य मौन।
साधनालीन मुनिवर प्रणम्य,
बन देव ज्योति वह रूप कौन ?

इन्द्रिय-निग्रह, जप-तपोनिष्ठ,
उपकार, शीलयुत कौन धन्य ?
जन-जन-सेवा जिसका अभीष्ट,
आचार्य प्रवर सा कौन अन्य ?

करते प्रशस्त पथ नयन-युगल,
वाणी बिखेरती अमित ज्ञान।
सौन्दर्य-धाम मुख-मंडल है,
वह कौन तपस्वी दीप्तिमान ?

है काया किसकी? प्रभु शङ्कर,
दर्शाते निज करूणा अपार?
मुक्ता सुधर्म के छिटकाते,
बन वैदिक संस्कृति-सूत्रधार॥

लोकोत्तर चरित विधाता वह,
मानवी कला की मूर्ति भव्य।
यह कौन विश्वत्राता आया,
भारत में ले अवतार नव्य?

कहती माताएँ देख उन्हें,
किस पुण्यमयी का कुक्षि-लाल?
अपलक निहारती तरुणी सब,
छवि-धाम बना यह पुण्यभाल॥

देखते युवक गण कहते हैं,
पौरुष का कैसा सुष्ठु रूप?
सोचते बृद्ध इस विग्रह में,
है दर्शनीय प्रभु का स्वरूप॥

सद्भाव, प्रेम, आदर्शयुक्त,
आनन्द-स्रोत वे पुण्यधाम।
अन्तर्मन प्रमुदित हो जिनसे,
माधुर्य रूप का कौन नाम ?

रस-सान्द्र हृदय, अनुपम प्रज्ञा,
कल्पना प्रवण, वाणी ललाम।
सौन्दर्य-सार शङ्कराचार्य,
संस्कृत-संस्कृति के ख्यात नाम॥

ये दूरदृष्टियुत कालजयी,
कल्याणधाम शङ्कर महान्।
भारत के हैं पर्याय बने,
उच्चादर्शों के बने प्राण॥

यह भरत-खंड-आलोक धाम,
पा आदि जगद्गुरु अति पावन।
उनके तप से ही आर्य देश,
रज मलय बनी है मन भावन॥

विक्रम संवत की नवीं शती,
जब धर्म-कर्म का घोर ह्रास।
बढ़ रही चतुर्दिक बर्बरता,
नास्तिकता करती अट्टहास ॥

मुद्रा मैथुन अरु मीन माँस,
फिर मद्य भोग था महायोग।
पाखण्डी पञ्च मकारों का,
नित खुलकर करते थे प्रयोग ॥

आश्रम विलास के केन्द्र विन्दु,
मायावी थे सब मठाधीश।
जितने जन उतने भिन्न पंथ,
आराध्य विविध गुण युक्त ईश ॥

पंडित थे दम्भी विद्वेषी,
जिनमें न अल्प सद्भाव-ज्ञान।
सबका अपना दल-दर्शन था,
बातुल बघारते नित्य शान ॥

दुर्बल था राष्ट्र, समाज छिन्न,
आचरण भ्रष्ट सब बने दीन।
आस्तिकता-श्रद्धा-भक्ति-क्षीण,
भारतवासी कर्तव्यहीन ।।

करते थे नित उपहास मूढ़,
कह "भांड़, धूर्त, शठ रचित वेद"।
आचरण धर्म की दुर्गति से,
आस्तिक जन में था महाखेद ।।

केरल प्रदेश कालड़ी ग्राम,
के शिव-गुरु आर्याम्बा महान्।
जो दया, स्नेह, आचरण, भक्ति,
संस्कृति को देते पूर्णमान ।।

थे प्रसन्न दम्पति, पर सहसा,
शिव-गुरु के झर रहे नयन।
पत्नी आर्याम्बा ने पूछा ?
"किस विषाद में डूबा मन"?

"प्रिये! समझ शिशु-हास्य-रुदन में,
निहित आर्य गृह का कल्याण।
पुत्रहीन दुर्गति पाते हैं,
नरकवास से कभी न त्राण॥

संतति विहीन तरसूं निसिदिन,
तेरी गोदी को मिले शान।
संतान एक हो दिव्य और,
उससे संस्कृति का बढ़े मान"॥

"दुश्चिन्ताओं को त्याग प्रभो,
जब चन्द्रमौलि का करें ध्यान।
साधना फलेगी निश्चित ही,
होगा सुपुत्र फिर मिटे म्लानि"॥

शुचि मन से दोनों ने मिलकर,
कर दिया यज्ञ, तप, तीर्थदान।
सन्मार्ग विधायक पुत्र हेतु,
सम्पन्न हुए शिव-अनुष्ठान॥

तप मानों स्वयं कृतार्थ हुआ,
पति-पत्नी को कर पुत्रवान।
शिव-गुरु ने शङ्कर नाम दिया,
सुत को शिव का वरदान मान॥

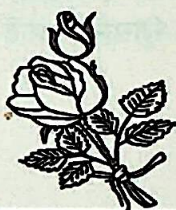
शङ्कर का आविर्भाव हुआ,
यह धरा धन्य निज सुत विलोक।
नव जीवन पाकर आर्य लोक,
बन गया वंद्य उत्कर्ष लोक॥

जग का अघ-ओघ मिटाने को,
जैसे प्रकटे श्री कृष्ण राम।
धरती पर धर्म सुरक्षा हित,
शङ्कर आए सङ्कल्प धाम॥

परिवार और माया विरहित,
देवोपम थे कमनीय कान्ति।
श्री राम कृष्ण के दूत बने,
देते अद्भुत संदेश-शांति॥

साम्राज्य और प्रासाद नहीं,
ग्राम्यांचल को कर दीप्तिमान।
जन-जन उन्नायक मेधावी,
शङ्कर प्रणम्य सद्गुण निधान ॥





तृतीय पुष्प ३

होये न तिरस्कृत मानवता

तन-संग सुबुद्धि लगी बढ़ने,
शुचि दूज चन्द्रमा के समान।
वय पाँच वर्ष बीतते हुआ,
बालक को लौकिक शास्त्र-ज्ञान॥

उपनयन हुआ, अध्ययन हेतु,
गुरुकुल पहुँचे श्रुतधर महान्।
निर्गत सहंसा उनके मुख से,
वह 'बाल-बोध' सा दिव्य ज्ञान॥

गुरुकुल के परम्परानुसार,
भिक्षाटन हित वटु एक बार।
जर्जर कुटीर सन्निकट रुका,
था खुला जहाँ पट मुक्त द्वार॥

"भिक्षाम् देहि" वटु ज्यों बोला,
निकली वृद्धा द्रुत दैन्यमूर्ति।
दे दिया आँवला एक मात्र,
जिससे करनी थी उदर पूर्ति॥

वृद्धा की श्रद्धा आँसू बन,
कह गयी विवशता त्वरित हाय।
पर दुख से द्रवित ब्रह्मचारी,
कितना रोया क्या कहा जाय॥

तत्क्षण मन में सङ्कल्प किया,
तेरा दारिद्र्य मिटाऊँगा।
जब तक है तेरी दीन दशा,
मैं तब तक चैन न पाऊँगा॥

यह सोच बढ़े आगे पड़ोस में,
भवन सुशोभित था विशाल।
वैभवशाली गृहस्वामी भी,
था खड़ा हाथ में लिए थाल॥

बोला—"मेरा यह अहो भाग्य,
आए इस पथ पर आज आप।
सेवा का अवसर दें मुझको,
कुछ करूँ दान, कुछ कटे पाप।।

भिक्षा-हित गुरुकुल से आते,
यदि सीधे वटु प्रासाद-द्वार।
धन धान्य प्रचुर पाते हमसे,
क्यों भटक रहे हैं द्वार-द्वार।।

सम्पत्ति-संचयी दान धर्म से,
करता है सबको कृतज्ञ।
अनदेखी उसकी जो करता,
उस सदृश न कोई यहाँ अज्ञ"।।

तब देख घृणा वटु के दृग में,
धनपति का मुख हो गया म्लान।
वटु बोल पड़ा—"हट मूढ़ दूर,
मत वैभव पर कर दर्प-मान।।

कंचन मद में उन्मत्त सदा,
देखते रहे तुम आसमान।
धन से जीवन कितना अशान्त,
क्या रहा कभी भी इधर ध्यान ?

धन-अर्जन तो दुःखदायी है,
रक्षण में भी है महाशोक।
जिसके विनाश-व्यय से पीड़ा,
पाता आया है सकल लोक॥

संग्रह-लिप्सा, फिर रक्षा की,
दुश्चिन्ता उपजाती अशान्ति।
मानव-मन में इससे अहरह,
पलती ईर्ष्या, अघ, क्रोध, भ्रान्ति॥

विद्वेष विषमता विग्रह के,
धनपति सब बुनते अशुभ पाश।
मानवता त्राहि-त्राहि करती,
धरती पर छाता महानाश॥

कलुषित धन ही है महिषासुर,
करता शुचि सद्‌गुण पर प्रहार।
अन्याय, पाप, अपराध सदा,
पूँजीपतियों के कंठहार॥

दीनों, दुखियों की छाती पर,
जो दले मूंग वे हैं अमीर।
सम्पत्ति-पूतना की माया करती.
अब भी ब्रज को अधीर॥

जो बना रहे परदुखं-कातर,
परहित सम्पादन ही स्वधर्म।
इससे मानव-गरिमा बढ़ती,
सद्भाव दान का यही मर्म॥

उस दानी का है जन्म सफल,
त्यागे जो पार्थिव मोह-पाश।
धनहीन-धनी का भेद मिटा,
कर दे सर्वोदय का प्रकाश॥

परमार्थ पुण्य है किन्तु यहाँ,
परिजन-विस्मृति है महापाप।
प्रासाद-पार्श्व में अकिञ्चना,
वह वृद्धा क्यों सह रही ताप?

उससे बढ़कर है कौन भला,
उपयुक्त दान के हेतु पात्र?
क्या वहीं अपेक्षित इस निमित्त,
जो वल्कलधारी दिव्य गात्र?

देखते जिसे उर में होती,
विगलित करूणा की सहज सृष्टि।
उस ममता रूपा माता पर,
क्यों पड़ी तुम्हारी नहीं दृष्टि?

आँवला एक देकर उसने, .
तो भूमण्डल पर दिया दान।
बलि जाँय कर्ण, बलि, रंतिदेव,
औदार्य देख उसका महान॥

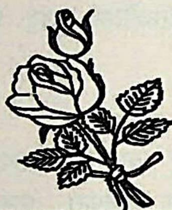
ये धर्म, यज्ञ, व्रत, तीर्थ, दान,
हैं मानव-हित के उपादान।
होये न तिरस्कृत मानवता,
आजीवन इस पर रहे ध्यान" ॥

"प्रभु पाहि माम्" कह वटु-चरणों में,
से लिपटा धनपति भरे नयन।
धोने को मन का कलुष-क्लेश,
बरसा जमकर मेघिल सावन ॥

आमलक रूप में स्वर्णदान कर,
वृद्धा का दुःख किया दूर।
वटु शङ्कर का प्रण पूर्ण हुआ,
मिथ्या वैभव-मद हुआ चूर ॥

वटु के यश का शुभ हर-सिंगार,
चू रहा डोलती मधु बयार।
पूरब में बिहँसे बाल अरुण,
धरती पुलकित निज शिशु निहार ॥





चतुर्थ पुष्प ४

आत्मा से आत्मा को जोड़ो

गहरा नीला आसमान धरती पर लहर रहा सागर है।
स्वर्णिम पीत पुनीत नील रंग रंगा नारियल कुंज सुघर है।।
किन्नरियाँ खेलती पहाड़ी रुचिर घाटियाँ मलय पवन है।
धानी रंग सुशोभित धरती यह केरल अनुपम उपवन है।।

काजू, चंदन, गोल मिर्च से सुस्मित पर्यावरण मनोहर।
मधु ऋतु आम्र कुंज में सोयी जिस पर सौ-सौ स्वर न्यौछावर।।
चलो चलो अब ग्राम 'कालड़ी' मंगलमय परिवेश जहाँ है।
परिजन माता-पिता मित्र का स्नेह सहज अन्यत्र कहाँ है?

अंधकार में पूनम सी वह, मधुर रूप आर्याम्बा मेरी।
पर-उपकार, सदाशय, करुणा माँ चरणों की बनती चेरी।।
पिता परित्राता पीड़ित के अद्भुत वेद शास्त्र व्याख्याता।
भारतीय संस्कृति-उन्नायक जनगणमन मुद मंगल दाता।।

कालड़ी निकट आये, निरभ्र नभ से हा! बज्र-निपात हुआ।
रोए शृगाल श्वानादि वहाँ पर नहीं हेतु कुछ ज्ञात हुआ॥
आये घर, माँ का चरण स्पर्श कर पूछे, "कहाँ पिताश्री मेरे" ?
उनकी स्मृति से व्यथित हुआ मैं गुरुकुल से चल दिया सबेरे॥

पिता शब्द सुनते ही माँ का धीरज छूटा, बिलखी बोली।
फूट फूटकर रोते देखा माँ धरती की छाती डोली॥
"बेटा! मेरा भाग्य सो गया पिता तुम्हारे स्वर्ग सिधारे।
सुत में उनका प्राण बसा था तुम उनकी आँखों के तारे॥

रह-रह कर शङ्कर रटते थे, वे चाहें प्रतिपल निहारना।
दैव हुए विपरीत आज निज सुत से उनको पड़ा बिछुड़ना॥
शोकाकुल शङ्कर ने सोचा भोग रोगमय लोक सकल है।
जल में खचित शून्य सा जीवन मृग-तृष्णा मिथ्या चञ्चल है॥

पुष्पित शतदल सा यह जीवन मुरझाना इसकी परिणति है।
जीवन प्रश्न मरण उत्तर ज्यों पद्मपत्र पर जल की गति है॥
चिन्तित सुत को पा अम्बा ने आँसू पीकर यों समझाया।
तुम ही अब कुल के सम्बल हो मेरी तो है जर्जर काया॥

हतभाग्या निःसम्बल हूँ मैं निसिदिन पल-पल डँसे अँधेरा।
क्या मैं कहूँ भवन लगता है स्वामी रहित भूत का डेरा॥
पुत्र! अभागिन माँ तो तरसे वधू मालती कब आएगी ?
मेरी साध यही शिशु-सुमनों से कुटिया कब खिल जाएगी ?

जीवन की उत्कर्ष पीठिका टिकती शुभ-विवाह वेदी पर।
दम्पति यज्ञ तीर्थ व्रत करके नारायण सम पूज्य यहीं पर॥
ब्रह्मचर्य व्रत पूर्ण हो गया बेटा। अब घर बार बसाओ।
शास्त्र सुसम्मत शुभ-विवाह कर वधू मनोरम घर में लाओ॥

फूले फले कामना तेरी ऋद्धि-सिद्धि दासी बन जाए।
प्रणय सुधा बरसे मन हरषे धरती में सौरभ बिखराए॥
सहनशीलता संयम व्रत से मन उन्नत देही निर्मल हो।
पावन मंगलमय परिणय से तपोनिष्ठ नरदेह सुफल हो॥

बोला सुत, "पच्चीस वर्ष पर परिणय-बंधन रीति-नीति है।
आठ वर्ष पर मोह-पाश का वरण-शास्त्र-उपहास-नीति है॥
मुझे पुत्र हो यही लालसा क्यों रखती हो मेरी माता ?
आसपास के अनगिन बच्चों से जोड़ो तुम अपना नाता॥

इन अबोध शिशुओं में से ही कहीं एक बन जाए भगीरथ।
पितरों का उद्धारक होगा उससे सम्भव सफल मनोरथ॥
देव लोक की प्रभा समुज्ज्वल कहीं कलुष का नाम नहीं है।
निर्मल चरित पूत ये बालक भेद-दृष्टि माँ उचित नहीं है॥

देख, स्वजन अविवेकी बनकर बहुसंख्यक बालक जनते हैं।
सम्यक पोषण के अभाव में ही बालक लम्पट बनते हैं॥
आज दशानन से कौरव से हम सबने है होड़ लगायी।
यह समाज खो रहा नियंत्रण वेदों पर विपदा मंडरायी॥

पर्यावरण दोष है दुस्तर रह पाएगा कौन अछूता।
सम्भव है भू-भार बने वह इससे अच्छा रहूँ निपूता॥
करों कल्पना परिणय कर लूँ पुत्र अनेक मुझे हो जाएँ।
उनसे जटिल परिस्थिति आये आर्य धर्म पर संकट छाए॥

विघटन, हत्या, संस्कृति का क्षय कदाचार स्वच्छंद विचरता।
धर्म कर्म हो रहे तिरोहित वेदाचरण न कोई करता॥
शून्यवाद, बहुवाद, वितण्डा मद्य-मांस सेवन अभीष्ट है।
मत-मतान्तरों के विप्लव से रूप धर्म का बना क्लिष्ट है॥

माँ! बतलाओं इस बेला में धरती का क्यों बोझ बढ़ाऊँ ?
यह अमूल्य हीरे सा जीवन मैं कौड़ी के मोल लुटाऊँ ?
अत: धर्म सब सुस्थिर होये आज्ञा दो माँ बनूँ प्रवासी।
पितृ-कामना फलीभूत हो करूँ कार्य शुभ बन संन्यासी ।।

"सन्यासी बन जग सुधार" पर मुझको कौन सहारा देगा।
स्वामी तो सुरधाम सिधारे तूँ भी सम्बल हो न सकेगा ?
कहो तुम्हें क्या ज्ञात नहीं हैं पुत्र परित्राता पितरों का ?
मोह मूल है सुत माता का मुदुल हास्य उसके अधरों का ।।

पड़े धर्म-संकट में शङ्कर समझाऊँ माता को कैसे?
सरि-स्नान के समय उन्होंने रचे अनोखे अभिनय ऐसे ।।
ज्योंही जल में अवगाहन हित तट से उतर खड़े थे शङ्कर।
गुप्त-योजना-क्रम में चीखे फूट पड़े मुख से भय के स्वर ।।

"पकड़ा पाँव ग्राह ने डूबा अभी मरा मैं अरे बचाओ।
संन्यासी से डरते जलचर मुझको भी माँ वही बनाओ" ।।
किंकर्तव्यविमूढ़ हुई माँ, उसके सिर पर विपदा भारी।
कैसे कहे बनो सन्यासी प्यारे सुत को, माता प्यारी ।।

डूब गयी वह शुभ तर्कों में जिसका सब कुछ सुत था जीवन।
बोल उठीं फिर बनो वही प्रिय जिससे हो जग-मङ्गल रंजन॥
"सन्यस्तोऽहम्" मुख से निकला ग्राह भगा तब पाँव छोड़कर।
चिन्तन करने लगे स्वयं पर भौतिक माया मोह तोड़कर॥

ज्ञान, भक्ति, संन्यास कर्म की शिक्षा मिले कहाँ में जाऊँ ?
उत्तम गुरुवर कहाँ मिलेंगे निज जड़त्व को जहाँ मिटाऊँ॥
दीक्षा गुरु हित निकल पड़े नर्मदा-तीर पर आश्रम पाया।
अमर कान्त में शान्ति राज्य था धरा सुरम्य तपोवन छाया॥

श्रेयस मार्ग बताने वाला धर्मस्थल वह दिव्य धाम था।
संत कुटीर सुशोभित होता श्रम-सिंचित पावन ललाम था॥
जहाँ आत्मा शुभ कर्मों में लगे वही आश्रम कहलाता।
परम ब्रह्म की प्राप्ति हेतु गुरुधाम मुक्ति साधन बन जाता॥

सुलभ ज्ञान-विज्ञान जहाँ पर श्रम-सीकर युत सत्काया में।
शिष्य वर्ग प्रमुदित था प्रतिपल स्वावलम्ब की शुभ छाया में॥
नाग-दादुरों की क्रीड़ा थी सर कलरव आनन्द मूल था।
मोहकं पर्यावरण यहाँ का सत् शिक्षा दीक्षानुकूल था॥

यज्ञ होम सुरभित था कण-कण विटप पुष्प सबका मन हरते।
आश्रम-कीर्ति-कथा को पल-पल खग-कुल सदा सुनाते रहते॥
गोविन्द पाद आचार्य-नमन, शंकरमन में अति श्रद्धा जागी।
उनके स्वर से स्वतः प्रमाणित सौम्य शिष्य गुरु पद अनुरागी॥

पूज्यपाद गुरुवर अभ्यर्चन।
मानस का सङ्गम अवगाहन॥

ओंकारेश्वर तीर्थ स्वयं जो
समाधिस्थ मुनिवर सद्ज्ञानी।
पूर्ण ब्रह्मवेत्ता योगी से
आर्ष ज्ञान पाते सब प्राणी॥

ऐसे अवतारी का वंदन।
दिव्यभाव का ही उद्दीपन॥ पूज्यपाद. . .

गौड़पाद गुरु शिष्य अप्रतिम
व्यास वृहस्पति सम व्याख्याता।
निज शिष्यों के परिपालक हैं,
महातपस्वी भगवत् ज्ञाता॥

ऐसे ऋषिवर का शुभ अर्चन।
संस्कृति संस्कृत का ही गायन। पूज्यपाद. . .

करुणा वरुणालय गुरुवर हैं
अतिशय मधुमय इनकी वाणी।
वेदशास्त्र के मूर्त्त रूप की
चिन्तनधारा है कल्याणी॥

श्रद्धास्पद का यह श्रद्धार्चन।
सत्यं शिवं सुन्दरम् गायन॥ पूज्यपाद. . .

शङ्कर पाकर हुए चमत्कृत जगा भाव क्या-क्या दे डालें।
ज्ञान-दान में जुटे अहर्निश जिससे प्रिय जग-भार उठा ले ॥
योग, न्याय, वेदान्त तत्त्व फिर ब्रह्म सूत्र का भाष्य पढ़ाया।
ज्ञान भक्ति सत्कर्म उदय ही शिक्षा का उद्देश्य बताया ॥

अनुशीलन, चिन्तन, गुरु-सेवा में ही मन उनका रमता था।
हुए सुदीक्षित जब गुरुवर से दिव्य भाव हर पल जगता था ॥
गुरुवर मुख से हुआ नि:सरित "शङ्कर! तुम संस्थान बनोगे।
शाश्वत सत्पथ नायक होकर जन-जन का कल्याण करोगे ॥

सच्चरित्र बन सात्विक सरसिज सम यश जग में जा फैलाओ।
सद्गुण शीलवान बनकर तुम उठो, धर्म की ज्योति जलाओ ॥
आज चतुर्दिक घोर निराशा अस्त-व्यस्त है भारत माता।
आत्मा से आत्मा को जोड़ो राष्ट्र ऐक्य के बनो विधाता ॥

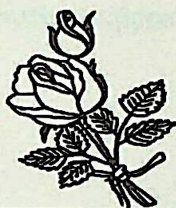
सूत्रहीन गुरु-शिष्य हो रहे यही विषम चिन्ता है मेरी।
लुप्त हो रहा शास्त्र, विवादों पाखण्डों की बजती भेरी" ॥
विषम भाव सुरसा मुख व्यावृत सकल विश्व का यह विकार है।
निष्ठुरता, छल, छद्म घात ही जन-जन पर दारुण प्रहार है ॥

श्रम-महिमा हो रही उपेक्षित अनय, कलैव्य, आलस्य भाव है।
सच्चरित्र-श्रम-धर्म-कर्म का युवा-जगत में अब अभाव है।।
मुझसे जो कुछ रहा अधूरा उसकी पूर्ति तुम्हीं से होगी।
मन कहता-तू भूमण्डल पर उतरा ब्रह्म रूप है योगी" ।।

युग-युग का तप आज फला है, आज साधना ने वर पाया।
आर्ष गिरा ने पाया सम्बल शङ्कर पर सम्बल की छाया।।
आज्ञा गुरु से ले शङ्कर ने टेरा—"माँ शारदे!" सदय हो।
धरती पर हो वेद समादृत अनय लुप्त हो, शास्त्र-उदय हो।।

निकले तीर्थ-भ्रमण हित यतिवर
दण्ड कमण्डल लेकर हाथ।
ज्ञान-भक्ति की दीप-शिखा थी
शुचि सङ्कल्पों के ही साथ।।





पञ्चम पुष्प ५

हम सबकी एक मनुष्य जाति

शुभ ज्ञान-कोष अम्बुधि अपार,
ले सद्‌विचार, देही-विदेह।
शुचि वेद-ब्रह्म-विग्रह शङ्कर,
आ गए लुटाने अमित स्नेह॥

स्वर्गादपि सुन्दर भरत-भूमि,
इस सिद्ध भूमि को है प्रणाम।
ऋषि मुनियों की जो तपस्थली,
अविमुक्त क्षेत्र नयनाभिराम॥

शङ्कर-त्रिशूल पर राज रही,
संस्कृति व्याख्या सी मोक्षधाम।
पावन तट-स्थित सुरसरि के,
काशी-नगरी का सुयश नाम॥

भौतिक आध्यात्मिक उर्जा के,
उद्दाम उत्स शिव पुण्यकाम।
शङ्कर करते नित अभिनन्दन,
काशी-सुरसरि को कर प्रणाम॥

संकीर्ण गली से होकर वे,
जा रहे शिष्य संग एक बार।
आ गया श्वपच सहसा सम्मुख,
ले महाभयंकर श्वान चार॥

"रे शठ अन्त्यज! रुक जा, रुक जा,
मत छू देना काया पवित्र"।
सब शिष्य लगे चिल्लाने यों,
देखा जब दुस्साहस विचित्र॥

अति नम्र श्वपच हँस बोल पड़ा—
हे महाप्राण! हैं वन्द्य आप।
केवल छूने से कहें भला,
क्या हो जायेगा महापाप?

लोहे को छूकर पारस भी,
क्या बन जाता है स्वयं लौह ?
ये वीतराग कैसे जिसमें हैं,
भेद-भाव, मद-मान मोह ॥

'प्रभु' आप ब्रह्म के ज्ञाता हैं,
फिर क्यों यह मिथ्या दम्भ मान ?
अन्त्यज-अग्रज, अस्पृश्य-स्पृश्य,
यह भेद-बुद्धि, कैसा विधान ?

ज्ञानी कुशाग्र, गुरुवर प्रणम्य
हैं आप विज्ञ, मैं महामूढ़।
कृपया मुझको भी बतलायें,
काया-माया का भेद गूढ़ ॥

अस्पृस्य कौन? देही अथवा,
यह तन जिसमें प्रभु करे वास।
है कौन नियंता हम सबका,
जिसके अधीन प्रत्येक श्वाँस ॥

कुछ करूँ निवेदन यदि मैं भी,
होगी छोटे मुँह बड़ी बात।
पर सबमें रमता ब्रह्म एक,
इस क्षुद्र बुद्धि को यही ज्ञात।।

जग मिथ्या, जीवन-नट कौतुक,
माया में लिपटा प्राणि मात्र।
मानवकृत वर्गीकरण यहाँ,
कोई अपात्र, कोई सुपात्र।।

यह पञ्चतत्त्व निर्मित काया,
सबमें मांसादिक रुधिर स्वेद।
घट-घट व्यापी जब वही ब्रह्म,
मानव-मानव में कहाँ भेद।।

सत्कर्म पूज्य, आचरण पूज्य,
उससे च्युत जो है वही नीच।
सद्गुण वरेण्य, सद्धर्म ग्राह्य,
आडम्बर तो अग्राह्य कीच।।

पूरा भूतल परिवार स्वजन,
जन-सेवा जिसका परम धर्म।
ईर्ष्यादि दोष से मुक्त मनुज,
जानता सृष्टि का गुह्य मर्म॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय ये वैश्य शूद्र,
अवयव समाज के हैं विशेष।
सब अपरिहार्य बन पूरक हैं,
बाधक तो केवल राग-द्वेष॥

आचार्य प्रवर ही स्वयं कहें,
क्या अनुचित कहता यह अबोध।
हो कृपा-दृष्टि, हो ज्ञानवृष्टि,
हो मुझको भी कुछ तत्त्व बोध॥

सुन मलिन श्वपच के पुष्ट तर्क,
सिर झुका शिष्य हो गए मौन।
अति विस्मय, हर्ष, विवाद ग्लानि,
युत मनोदशा को कहे कौन?

हे भद्र! आपने खोल दिए,
इन शिष्यों के हैं ज्ञान-नेत्र।
ये तदनुकूल आचरण करें,
भ्रम मिटे, दीप्त प्रत्येक क्षेत्र।।

सचमुच ही आप महाज्ञानी,
हैं स्तुत्य आपके सद्विचार।
सुलझाना अत्यावश्यक है,
जातिगत समस्या दुर्निवार।।

ऊँचे कुल का उन्माद व्यर्थ,
दो मिटा इसे मत बनो भ्रान्त।
ये द्वेष घृणा हैं अग्नितुल्य,
प्रेमामृत से कर इसे शांत।।

इस जग में घृणित अकिंचन जो,
पद-दलित कराहें बन अछूत।
वे दीनबंधु के कृपा-पात्र,
श्रद्धेय सदा, सर्वतः पूत।।

सद्ज्ञान, शील, तपहीन विप्र,
यदि जाति गोत्र पर करे मान।
समझो दम्भी वह महामूर्ख,
उसको न अल्प कर्तव्य ज्ञान।।

जीव ही ब्रह्म, ब्रह्म ही जीव,
'तत्त्वमसि' 'सर्व खाल्विदं ब्रह्म'।
चर-अचर व्याप्ति उस सत्ता से,
है वेद-शास्त्र का यही मर्म।।

ये ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य शूद्र,
मुख, भुज, उरु पग लड़ रहे आज।
जब अंग परस्पर करें घात,
हो क्यों न पंगु मानव-समाज।।

ब्राह्मण न पूज्य कहलाता है,
तन-मन यदि हो उसका मलीन।
धरती दबती उससे ही जो,
आचरण-भ्रष्ट, कर्तव्यहीन।।

जो आप सदृश निष्कलुष शूद्र,
हो जिसको निज कर्त्तव्य-बोध।
निश्चय वह सदा प्रशंसनीय,
उस पर सवर्ण क्यों करें क्रोध ?

यदि उच्च कुलोद्भव नास्तिक हो,
दूर से करें उसको प्रणाम।
हो भले श्वपच पर वह सुपूज्य,
जिसकी जिह्वा पर रहें राम॥

अद्भुत शिल्पी वह परम तत्त्व,
उसकी कृति हैं सब प्राणि मात्र।
जो कृति विशेष से करे घृणा,
बन सकता है क्या कृपा-पात्र ?

जन-जन में रमते इड़ा पिंगला,
सुषमन रूप धरे त्रिदेव।
जाग्रत कुंडलिनी युक्त व्यक्ति,
है ब्रह्म, बताते महादेव॥

सत् चित् आनन्दस्वरूप सदा,
आत्मा अद्वैत प्रकाशपूर्ण।
ध्रुव सत्य, यही परमात्म तत्त्व,
अंशी या अंश नहीं अपूर्ण॥

जो दृश्यमान माया उसमें,
चेतना रूप सत्ता अनन्त।
जल-वीचि सदृश युग जीव ब्रह्म,
कहते आए हैं साधु संत॥

छोटा या बड़ा धनी-निर्धन,
गोरा-काला या ऊँच-नीच।
यह सब विडम्बना है केवल,
हरि तो रमता हर जीव बीच॥

द्विज, देव, महामुनि संज्ञा से,
नागरिक न बनता है प्रणम्य।
निर्मल तन-मन से करे भक्ति,
वह नर होता प्रभु का अनन्य॥

यह वर्ण-व्यवस्था, भेद-भाव,
लोकानुभूति के बाह्य रूप।
घट-घट वासी है वही ब्रह्म,
वैविध्य रूप उसका अनूप॥

यदि भेद-भाव में तत्त्व कहीं,
भासित समझो वह निराधार।
चारो वर्गों से ग्राह्य भीख,
क्यों संन्यासी कहते पुकार?

सूकर कच्छप अवतार हुए,
हैं पूज्य सतत महिला ललाम।
यदि श्वपच शूद्र श्रद्धेय बने,
तो धरती बनती पुण्यधाम॥

प्रभु राम समादृत वह निषाद,
उसकी बतलाओ जाति कौन?
नारद, वशिष्ठ, एकलव्य, व्यास,
जाति से पूज्य? मत रहो मौन॥

शबरी का जूठा बैर भोग,
जातिगत-द्वेष पर था प्रहार।
परित्यक्तों के उद्धार हेतु,
श्री माधव तो बनते महार॥

भरा जिसमें जन-जन का प्यार,
निरखता सबको एक समान।
प्रेममय प्रभु का सुन्दर रूप,
प्रेम का अपर नाम भगवान्॥

समता, सेवा, भगवान-भक्ति,
सौहार्द-भाव हो सद्विचार।
सद्भाव प्रसारित हो पल-पल,
मिट जाये जगत से अनाचार॥

कण-कण में व्याप्त अखण्ड ब्रह्म,
गन्तव्य एक है विविध पंथ।
हम करें परस्पर प्रेम सदा,
यह तथ्य बताते धर्म-ग्रंथ॥

आत्मा की मुक्तावस्था में,
सब भेद-भाव होते विलुप्त।
निज-पर का परदा हटे दूर,
सब हृदय जुटें, कल्मष सुसुप्त॥

शिष्यों से बोले—"वत्स! कीर सम,
रटे ज्ञान का तभी अर्थ।
व्यवहार पक्ष से उसे जोड़,
प्रस्तुत करने में यदि समर्थ॥

ये हैं 'गुदड़ी के लाल' दे रहे,
हमको निर्मल सद्विचार।
इनकी शिक्षा हृदयंगम हो,
करना न किसी का तिरस्कार॥

मानव शरीर के अंग विविध,
हैं अलग किन्तु ये अपरिहार्य।
बनते हैं एक इकाई क्यों,
यद्यपि सबके हैं विविध कार्य॥

हैं वेद-शास्त्र के वर्ग-भेद,
मानव-हित ही इनका स्वरूप।
इन रंग-विरंगे पुष्पों से,
बनती माला सुरभित अनूप॥

है ब्रह्म पिता नर-नारी का,
धरती को माता सहज जान।
सन्तानों में हो भ्रातृ-भाव,
तो भू पर उतरे स्वर्ग मान॥

धरती के मानव को समझो,
तुम तुच्छ नहीं अव्यक्त ब्रह्म।
जन-जन में प्रभु को सब देखें,
अद्वैत भाव का यही मर्म॥

हम सबकी एक मनुष्य जाति,
सर्वोपरि 'मानव धर्म' एक।
यह मान 'तत्त्वमसि' भाव भरें,
सर्वोदय हो, सद्भाव नेक॥

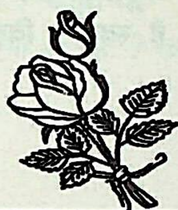
विद्वेष, परस्पर भेद-भाव के,
समाधान हित किए कार्य।
जग को दर्शाया जिन शिवत्व,
थे धन्य आद्य शङ्कराचार्य॥

वह श्वपच नहीं था स्वयं ईश,
अवतरित हुए थे लोक मर्त्य।
वर्गगत दोष-उन्मूलन हित,
प्रभु ने बतलाया ज्ञान-सत्य:

"हे वत्स! आज मैं अति प्रसन्न,
कहता हूँ मेरी बात मान।
भ्रम पूर्ण मतों का खण्डन कर,
तूँ ब्रह्म सूत्र का कर विधान॥

वैदिक सुधर्म जग में फैले,
हो ब्रह्मज्ञान वेदान्त-मूल।
इसकी तुम सरल व्याख्या कर,
जिससे मिट जाए जगत्-शूल"॥





षष्ठ पुष्प ६

क्या है सत्य ? जीव-हित-साधन

गुत्थी सुलझे, भ्रम मिट जाए
शास्त्र-अर्थ की प्रथा पुरानी।
तर्क-वितर्क, प्रश्न-उत्तर से
तत्त्वबोध पाते मुनि ज्ञानी ॥

गुरु शङ्कर का खुला द्वार था
जिज्ञासावश लोग पधारें।
शङ्का-समाधान पाकर नित
कालजयी का चरण पखारें ॥

भव सागर में डूब रहे हम
गुरुवर बोलें कौन सहारा ?
प्रभु पद-पद्म सुदीर्घ नाव ही
आश्रय है, जग-खेवन हारा ॥

बंधा कौन ? जो भोगलिप्त है
क्या है मुक्ति ? विरक्ति भाव है।
घोर नरक क्या ? अपना ही तन
क्या है स्वर्ग ? वितृष्ण भाव है॥

विश्व-विजेता, मुक्त कौन है ?
वेदोत्पन्न ज्ञान अधिकारी।
स्वर्गपद क्या ? दया अहिंसा
नरक द्वार क्या? केवल नारी॥

किसे नींद-सुख ? ध्यान मग्न को
जगते कौन? विवेकी जो नर।
कौन शत्रु ? इन्द्रियाँ स्वयं की
बनें मित्र कब ? संयम पाकर॥

कौन दरिद्र ? महा लोभी जो
धनी कौन ? संतोष सहित जो।
जीवित शव क्या ? निरुद्यमी नर
सुखी कौन ? है आश-रहित जो॥

बंधन क्या ? ममता घमंड ही
मोहे कौन सुरा सम ? नारी।
कौन महा अंधा ? कामी नर
क्या है मौत ? अयश निज भारी ॥

गुरु कौन ? जो हित उपदेशक
कौन शिष्य ? जो रत गुरु-अर्चन।
महारोग क्या ? भव-सागर ही
उसकी औषधि ? तत्त्व-विचिन्तन ॥

भूषण क्या ? उत्तम स्वभाव ही
तीर्थ कौन ? मानस पावन है।
हेय यहाँ क्या ? कनक-कामिनी
श्रव्य सदा ? गुरुवेद-वचन है ॥

ब्रह्म-प्राप्ति-साधन बतलावें
दान, ध्यान, सत्संगति नाता।
संत कौन ? जो राग त्याग कर
मोह शून्य हो शिव पथ-ध्याता ॥

जीव-ज्वर क्या ?. चिन्ता ही बस
मूर्ख कौन ? जो बोधहीन है।
प्रेय कार्य क्या ? हरिहर-अर्चन
शुभ जीवन क्या ? दोषहीन है।।

विद्या क्या ? प्रभु-पद-प्रदायिनी
क्या प्रबोध है ? मुक्ति-हेतु जो।
क्या है लाभ ? ब्रह्म का मिलना
कौन विश्व-जित ? मन-विजयी जो।।

वीरों में अति वीर कौन है ?
काम बाण जिसको न सताता।
कौन धीर प्रज्ञाशाली है ?
रमणी-चितवन घात न खाता।।

घातक विषय क्या ? विषय भोग ही
दुःखी कौन ? वासना-निरत जो।
पूज्य कौन ? शिव-पद-अनुरागी
कौन धन्य है ? परहित-रत जो।।

ज्ञानी हित वर्जित विधेय क्या ?
जग से राग, पाप ही जानो।
पढ़े ग्रंथ फिर चले धर्म पर
जगत्-मूल क्या ? चिन्ता मानो॥

कौन महाज्ञानी है जग में ?
ठगे न जिसे पिशाचिन नारी।
बेड़ी बनती कौन ? सुवामा
व्रत क्या ? विनय-भाव सुखकारी॥

जान नहीं पाते सब क्या क्या ?
नारी-मन की बात, चरित को।
क्या दुस्त्याज्य ? व्यर्थ की आशा
कहें किन्हें पशु ? ज्ञान-रहित जो॥

किसके साथ न रहना समुचित ?
मूढ़, नीच, खल, पापी के संग।
शीघ्र करें क्या मोक्ष-लाभ हित
ममता-त्याग, भक्ति, सज्जन संग॥

लघुता क्या ? सर्वत्र माँगना
प्रभुता क्या ? याचना न करना।
जन्म सफल कब ? पुनः न जनमे
सुफल मृत्यु क्या ? पुनः न मरना ।।

गूंगा बहरा किसको जानो ?
सम्यक् कहे न सत्य सुने जो।
किस पर नहीं भरोसा करना ?
नारी कोई बात कहे जो ।।१।।

अनुपम तत्त्व कहाँ ? शिव में ही
उत्तम क्या ? सच्चरित-सत्व है।
त्याज्य कौन सुख ? रमणी-लिप्सा
अभय-दान क्या ? अभय तत्त्व है ।।

सबसे बड़ा शत्रु बतलाओ
क्रोध, अनृत युत काम लोभ है।
विषय भोग से तुष्टि न उसकी
दुःख मूल क्या ? महा मोह है ।।

मुख-भूषण क्या ? साक्षरता है
क्या है सत्य ? जीव-हित-साधन।
करके काम न पछताना कब ?
विधिवत् हरि-हर-अर्चन वंदन।।

कहाँ नहीं भय ? मात्र मुक्ति में
मुक्ति सुलभ कब ? मरता जब मन।
चुभती सदा ? मूढ़ता निज की
पूज्य कौन ? गुरु, देव, वृद्ध जन।।

प्राण-हरण-हित यम यदि आयें
कार्य कौन सा तब विधेय है।
तन-मन-वचन सभी उपाय से
यम-भय-हारी कृष्ण गेय है।।

कौन दस्यु ? तन विषय-वासना
सभा-सुशोभित कौन ? सुधी ही।
मां सम सुखदायी क्या ? विद्या
बढ़े दान से ? सरस्वती ही।।

सतत भयातुर रहना किससे ?
जग-जङ्गल, लोकापवाद से।
बन्धु कौन ? जो विपति सहायक
कौन पिता ? परिपालन जिससे ॥

शेष न बचता किसको पाकर ?
सुखदायक शङ्कर प्रसाद ही।
जगत सुपरिचित कब होता है?
पूर्ण ब्रह्म सम्प्राप्ति बाद ही ॥

दुर्लभ क्या ? सद्गुरु, सत्संगति
ब्रह्म-विचार, त्याग, शिव-चिंतन।
सभी जनों से दुर्जय क्या है ?
कामदेव का मोहक चितवन ॥

कौन चतुष्पद ? धर्महीन जो
हो पंडित पर बोध न पाता।
सुधा समान गरल क्या ? रमणी

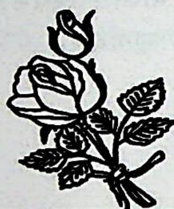
अरि सम सुहृद कौन ? कुल-नाता ॥

उत्तम दान ? सुपात्र दत्त ही
तड़ित वेग सम क्या? धन-यौवन।
अन्त समय वर्जित, विधेय क्या?
पापाचार, शिवार्चन-वंदन ।।

दिवस-रात्रि हर पल सुचिन्त्य क्या ?
जगत झूठ, शिव-तत्त्व सत्य है।
कर्म कौन ? प्रभु प्रमुदित जिससे
भव सागर-आस्था असत्य है ।।

करें पाठ या सुनें सर्वदा
प्रश्नोत्तरी रत्न मणिमाला।
कमलापति-शिव-कथा सदृश ही
पाते बुधवर मोद निराला ।।





सप्तम पुष्प ७

माँ की विस्मृति महापाप है

पादप, पुष्प, लता, तृण मंडित भूमि मनोहर प्यारी न्यारी।
कस्तूरी मृग पवन डोलता गीत गा रही दिशा दुलारी॥
वर्ण-वर्ण की पुष्प-राजि मिल बना रही प्राचीर मनोहर।
दृष्टि-पंथ पर पर्णकुटी है जिसमें राज रहे गुरु शङ्कर॥

कोमल केसर किरण झर रही सुषमा रीता पात्र भर रही।
अपर शान्ति का पाठ अलौकिक प्रकृति वधू निस्पन्द पढ़ रही॥
सरस्वती-उपवन में उस पल विमल शारदा-स्वर यों गूँजा।
शब्द शब्द संगीत पूर्ण था बड़ी मनोरम वाणी-पूजा :

शुभ मति मातृ सरस्वति! वर दे!
तमस-तोम विदलित कर दे जग॥
आभामय कर दे.......॥

सदय हृदय की आश्रय रूपा।
वाणी, ब्राह्मी भगवति दिव्या॥
माया मोह मदांध दूर कर।
मंगलमय स्वर दे..........॥

दुःख दैन्य से पीड़ित मानव।
हिंसा-शापित चिन्ता नव-नव॥
यंत्र जर्जरित जन-मानस में।
सुधा सिक्त स्वर दे........॥

जन-जन का विद्वेष मिटाकर।
वर्ग-वर्ण वैषम्य भुलाकर॥
हृदय-हृदय में प्रेम भाव भर।
राष्ट्र-ऐक्य कर दे॥
शुभ मति मातृ सरस्वति! वर दे॥

हरिशंकरी वृक्ष के नीचे उच्चासन पर बैठे गुरुवर।
उत्सुक एक शिष्य ने पूछा—"माँ की महिमा क्यों श्रेयस्कर"?
गोष्ठी क्रम में जैसे ही जननी-गरिमा की चर्चा आयी।
आर्याम्बा की मूर्त्ति अचानक मानस-पट पर उभरी, छायी॥

आयी माँ की याद, मघा के मेघ दृगों से लगे बरसने।
उष्णधार संतप्त सरोरुह क्षण में विदलित हुए, विरसने।।
विकल व्यथित माँ की चिन्ता में डूब गए वे पाठ छोड़कर।
शिष्यों ने द्रुत पूछा—"गुरूवर! दृग में है ये कैसी सीकर"?

गुरु बोले—"माता ने मुझको अपनी जीवन-थाती माना।
मैं कपूत ऐसा निकला हूँ जिसने माँ का मर्म न जाना।।
ज्ञान गुरुत्व, मान सब मेरा शिष्यों, सचमुच म्लान हो गया।
माँ की विस्मृति महापाप है आज मुझे यह ज्ञान हो गया।।

जननी जगदम्बा स्वरूपिणी परमपवित्र पूजनीया है।
उसकी पद-सेवा से बढ़कर जग में और तपस्या क्या है?
माँ सुरसरि, अपवर्ग, तपस्या यज्ञ धूम सी वह पावन है।
सेवा होती दीक्षित जिससे वह माँ है, उसका जीवन है।।

सुत-हित में सर्वस्व समर्पण कर कृतकृत्य बनाती माता।
लाल सदा होवे निहाल बस एकमात्र सुख उसको भाता।।
कभी न चुकता कर पाएगा बेटा यदि चाहे लौटाना।
तप, श्रद्धा की सहज मूर्तिवत् जननी को इस जग ने जाना।।

मातृ-अङ्क पर्यङ्क सुखद है ममता स्नेह पुञ्ज मुखमंडल।
उसका हृदय देव मंदिर है उसकी कृपा पुत्र का सम्बल॥
जग-जङ्गल में सुमन-बाटिका सुरभि बिखेर रही है माता।
सुत-जीवन सुखमय अनुदिन हो युग से टेर रही है माता॥

ऐसी देवी से अब दूरी सह्य नहीं है मन घबड़ाता।
बड़ा कठिन है तरल दूध का दैहिक बन्धन-रिश्ता-नाता॥
शिष्यों को सब कार्य बताकर निकल पड़े आश्रम से शङ्कर।
रुग्णा माँ थी पड़ी, पुत्र ने माथा टेक दिया चरणों पर॥

"मुझ सी दुखिया को प्रणाम यह कौन कर रहा ? नाम बताओ।
मेरा बेटा कब लौटेगा उसको मेरे सम्मुख लाओ"॥
माँ! मैं वही लाल हूँ तेरा तुम पुकारती जिसको शङ्कर।
आया हूँ तेरे दर्शन-हित दो माँ! अब सेवा का अवसर॥

"भाग्योदय क्या हुआ हमारा सचमुच मेरा शङ्कर आया"।
देख लाल को आर्याम्बा ने सिर चूमा, गोदी बैठाया॥
वत्स-भाव संघनित हुआ था आर्याम्बा के शुचि मानस पर।
हिम सम पुत्र देख बन आँसू ढुलक रहा माँ के आनन पर॥

आर्याम्बा जगदम्बा रोए क्यों न धैर्य का धीरज छूटे ?
माँ-बेटे को फूट-फूट कर रोता देख न अम्बर फूटे ?
आर्याम्बा सामान्य न माता भारत-संस्कृति उद्धारक थी।
जन-जन श्रद्धा-पूज्य भाव आदर्शों की वह संवाहक थी॥

दिव्य लाल को निरख-निरखकर जननी विह्वल हुई न बोली।
क्षण में बीते कल्प, न जाने कब कैसे यह रसना डोली॥
"मेरे मानस के सम्बल तुम जीवन-ज्योति, आँख के तारे।
श्वाँस श्वाँस की गति तुमसे है पीड़ित माँ यह पंथ निहारे"॥

योगी साधक संन्यासी की स्वजनों पर आसक्ति निन्द्य है।
धर्मरूढ़ि से मुक्त मनीषी समदर्शी वह जगत वन्द्य है॥
पैर दबाना, पंखा झलना, औषधि देना, नित्य कर्म था।
जप तप छोड़ मातृ-सेवा में रम जाना शङ्कर सुधर्म था॥

प्रतिदिन पूर्णा नदी-स्नान का व्रत पालन आर्यम्बा करती।
भंग न हो व्रत अंत समय में दुश्चिंता में डूबी रहती॥
माँ की व्यथा जान वह बोले इसके लिए व्यर्थ डरती हो।
आजाएगी पूर्णा-तुम तक जिसमें अवगाहन करती हो॥

माँ मैं युवक शक्ति यह मेरी किस दिन बोलो सार्थक होगी?
नदी-धार यदि मोड़ न पाऊँ तन-मन-शक्ति निरर्थक होगी ।।
निकले बाहर जहाँ मित्रगण दर्शनार्थ आतुर थे उनके ।
शान्त उदधि था, फूट पड़ी तब ओजपूर्ण वाणी श्रीमुख से :

सुहृद! आपके मैं सम्मुख हूँ गुने, एक जो बात बताता ।
शिष्ट, शक्ति-सम्पन्न, विवेकी युवक स्वर्ग धरती पर लाता ।।
और सुनें, सन्मार्ग-पथिक की रचना से ही मही शोभती ।
युवा-शौर्य, मकरंद तत्त्व से ही महँ-महँ करती है धरती ।।

जो शुभ है, जो दृढ़ है, ध्रुव है बाधा से जो हार न माने ।
तत्पर हो जो लोक-लाभ में जगती युवक उसे ही जाने ।।
पर पीड़ा हित जो विराग ले जूझे नित परहित साधन में ।
निन्दा-स्तुति समभाव मानकर अभय सदा विचरे जीवन में ।।

वायु थमे, तट धारा मुड़ती कार्य असम्भव जहाँ सुगम है ।
धैर्यव्रती,.. संघर्षव्रान युवकों का ध्येय सतत उद्यम है ।।
रुकना, झुकना, कुंठित होना दैन्य भाव ही अंधकूप है ।
अनुशासन, अध्ययन, नम्रता युवकों की थाती स्वरूप है ।।

युवा-काल तो शौर्य-काल है जोश-होश जिसमें अपार है।
क्षण में चूर-चूर हो जाता नग पाकर उसका प्रहार है।।
दुस्साहस, आलस, प्रपञ्च, भ्रम, अनय, क्रोध को दूर भगाएँ।
बनो समर्थ अजेय रहोगे जीवन में सार्थकता पाएँ।।

विनय भाव से हृदय जीतकर शिष्ट भाव से आदर पायें।
सदाचार श्रम-शिलष्ट आचरण से जीवन को धवल बनायें।।
युवक शुद्ध मन से ठानें तो क्रियाशील जीवन होता है।
यदि अविरल चेष्टा की जाए सफल मनोरथ तब होता है।।

वे दरिद्र हैं, दीन-हीन हैं आलस में जो समय गँवाते।
जो जाग्रत हैं, कर्म-निरत हैं सुख-वैभव प्रतिपल वे पाते।।
श्रम जीवन का आकर्षण है श्रम-धर्मा मानव सुख भोगी।
श्रम से विरत पंगु वह बनता निष्क्रिय नर बनता नित रोगी।।

विकट प्रश्न से घिरा मित्र हूँ यदि पाऊँ अपनों का सम्बल।
जननी-ऋण से मुक्ति मिलेगी सार्थक होगा मेरा तन-बल।।
"कौन समस्या"? शीघ्र बतावें गूँजा स्वर समवेत वहाँ पर।
समाधान सम्भव यदि हमसे उसके लिए सभी हैं तत्पर।।

ग्राम कालड़ी से पूर्णा की दूरी बड़ी समस्या माँ की।
मिल जुलकर चाहें तो कर दें परिवर्तित धारा सरिता की॥
मिट्टी उगले सोना प्रियवर क्रूर-प्रकृति बन जाए चेरी।
श्रम-बल की महिमा न्यारी है युवा-शौर्य हो सार्थक तेरी॥

जूझे सब श्रमदान-कार्य में युवा-शक्ति की अद्भुत माया।
बाँस बल्लियों से रच ठोकर पूर्णा को अपने घर लाया॥
मंत्र-शक्ति के रहने पर भी अवतारी हैं करतब करते।
लोक-प्रशिक्षण के निमित्त ही रहते विविध रूप वे धरते॥

पूर्णा सरि शङ्कर चेरी थी पा सङ्केत स्वयं आ जाती।
युवा शक्ति, श्रमदान तत्त्व को गुत्थी अनसुलझी रह जाती॥
आर्याम्बा ने कहा एक दिन बेटा! परमधाम पहुँचाओ।
मुझ बृद्धा अबला को जिस विधि मोक्ष मिले बातें बतलाओ॥

शङ्कर बोले—"मेरी माँ सुन महादेव ही भोले भाले।
उनमें निर्गुण सगुण समाहित भक्तजनों के वे रखवाले॥
सकल कामना पूर्ण उन्हीं से शङ्कर सब इप्सित फल दाता।
मुमुक्षुओं के मोक्ष प्रदाता उनका स्मरण करो हे माता॥

गंगाधर भूतेश्वर भोले,
चन्द्रमौलि नटनागर स्वामी।
महादेव शिव कृपा दृष्टि से
सद्गति पायें खल-दुष्कामी॥

शिव शंकर हे औढरदानी !
पूर्ण, सर्वगत, सर्वरूप, सम्पूर्ण कला के ज्ञानी।
वेदवेद्य श्री प्रणवरूप तुम कृपानिधान अमानी॥
तुमसे पुरुष और नारी की लीला जग ने जानी।
आशुतोष की कृपा-कथा की फहरे सतत निशानी।
माँ को मोक्ष सुलभ हो सत्वर, सुन शङ्कर की बानी॥

अलख अनादि अनन्त प्रभु
मेटे सब भव रोग।
विश्व रूप-महिमा अमित
क्या वर्णन के योग्य॥

पूजा, दान, सुतीर्थ, तप
यज्ञ योग अरु ज्ञान।
सकल साधना फलवती
शिव का जब हो ध्यान॥

आर्यम्बा को परम गति
देवें मेरे ईष्ट।
आशुतोष! कब आपकी
होगी मुझ पर दृष्टि॥

"हो कैलासवास माता को" स्तुति सुन आज्ञा दी महेश ने।
आर्यम्बा सन्निकट आ गये उनके गण विकराल वेष में॥
माँ ने कहा—पुत्र! मत सौंपो, मैं डर रही देख इन गण को।
प्रभु लीला जो परम मनोहर दिखलाओ दुःख शोक हरण को॥

शङ्कर बोले—"याद करो माँ विश्वरूप हरिहर सुखदाता।
ज्योतिस्तम्भ, अंग सुमनोहर दुष्ट दलें वे मोक्ष प्रदाता"॥
माँ का रोम-रोम अति पुलकित देख पुत्र-सेवा मनुषेतर।
विह्वल स्वर में आर्यम्बा के मुख से निकली वाणी सत्वर॥

"आशीर्वाद यही है बेटा! कीर्ति-पताका दिक् प्रसरित हो।
भारत-सर-शङ्कर सुपद्म से जग-उपवन अनुदिन सुरभित हो"॥
त्रिकालज्ञ, तुम कालजयी हो, धरती पर अमृत बरसाओ।
जन-गण के मंगलदाता बन धर्म-कर्म की ज्योति जलाओ॥

अनुगामी तेरे पथ का जो जीवन उज्ज्वल सदा रहेगा।
राष्ट्र जगेगा सिंहनाद कर तम पर ज्ञान-प्रदीप जलेगा।।
मंगलमय ले नाम तुम्हारा भारत राष्ट्र शीघ्र सुधरेगा।
पावन तेरा चरित यादकर समाधान प्रश्नों का लेगा।।

आप्तकाम हो गदगद हूँ मैं सकल साधना पूर्ण हो गई।
आवश्यकता रही न अब तो जर्जर काया व्यर्थ हो गई।।
शङ्कर विरचित 'कृष्णाष्टक' सुन आर्याम्बा सुरधाम सिधारी।
परिजन की तीखी वाणी की धार पड़ी शङ्कर पर भारी।।

"सन्यासी तुम बड़े प्रपञ्ची धर्म भूल लालच करते हो।
पैतृक धन पर गिद्ध दृष्टि रख तुम क्यों अब गृहस्थ बनते हो" ।।
भ्रमित हुए हैं आप सभी क्यों धन-लालसा न मुझको भाई।
मैं हूँ यती लोभ से विरहित सुनें, लक्ष्य मेरा सुखदाई :

रमे सदा वेदान्त-वचन में
भिक्षा ही साधन सुखकारी।
चिन्तामुक्त महादयालु ही
भाग्यवान लंगोटीधारी।।

तरु-छाया ही बने बसेरा
अञ्जलि मात्र अल्प आहारी।
गुदरी सम त्यागे नारी को
भाग्यवान लंगोटीधारी ॥

नर-तन-गर्व मिटाकर जो भी
आत्मनिरीक्षण-रत अविकारी।
वासर-निशा ब्रह्म पद ध्याता
भाग्यवान् लंगोटीधारी ॥

आत्मानन्द परम संतोषी
इन्द्रिय-चेष्टा-अंकुशकारी ।
भूले अन्तर्बहिर्विषय सब
भाग्यवान् लंगोटीधारी ॥

महामंत्र "ॐ नमः शिवाय"
हृदयमध्य बसते त्रिपुरारी।
भिक्षाशन ही, भ्रमण सर्वदा
भाग्यवान् लंगोटीधारी ॥

क्या सोचते सुहृद हैं अपने मुझे अर्थ-लिप्सा न सताती।
वृद्ध सेविका को सब देना आर्यम्बा थी यही बताती॥
सभी बन्धु तब और रुष्ट हो चले गये सत्वर मन मारे।
शङ्कर ने तब किये अकेले विहित कार्य जितने थे सारे॥

आर्याम्बा पूरे समाज की माता थी सामान्य न नारी।
परम साध्वी महामनीषा उज्ज्वल प्रतिमा थी अति न्यारी॥
"धन्य धन्य माता आर्याम्बा शङ्कर सम सुत तुमने पाई।
श्रवण बहुत पीछे हैं इनसे" गगन-गिरा तब पड़ी सुनाई॥

मरने पर भी विघ्न उपस्थित कुटिलों का लगता है फेरा।
युग-विराट की माता को जब पग-पग पर विपदा ने घेरा॥
अगर व्यथित हो ऐसी माता भारत हेतु कलंक जानिए।
भला जगत में कभी न होगा अधः पतन के रूप निरखिए॥

दाह-श्राद्ध माँ का कर देना संन्यासी हित पाप कर्म है?
माँ के प्रति दायित्व निभाने से भी बढ़कर कौन धर्म है?
माता से मिलता यह जीवन सार्थकता इसकी सब नाते।
उसकी निशि वासर सेवा में खप जाएं तब धर्म बताते॥

माँ-सेवा ही सुत का सुधर्म
सद्ग्रन्थों की वाणी सुरम्य।
अक्षरशः सत्यापित करते
वे शङ्कर हम सबके प्रणम्य॥





अष्टम पुष्प ८

गुरु दिव्य ज्योति का संवाहक

दिव्यालोक शान्त मुखमण्डल
दीर्घ नेत्र में दया अपार।
लगता है करूणा-सागर का
हुआ धरा पर नव अवतार॥

चिन्तनरत थे आचार्य प्रवर
निज आश्रम में अतिशय प्रशांत।
गुरुवर! गुरुवर!! कहता आता
कुछ दूर दिखा वह पथिक क्लांत॥

यह कौन आ रहा आर्त्त हृदय
लाओ उसको मेरे समीप।
लगता ये राजशेखरन हैं
कविवर अनुपम, केरल-महीप॥

इनके सुराज्य में प्रजा सुखी
ये सरस्वती के वरद पुत्र।
हैं अति भावुक, कल्पनाशील
रचते मङ्गलमय नाट्य सूत्र॥

दौड़े आए नृपवर आतुर
गुरु-चरणों पर रख दिया माथ।
छूटा संशय, आश्वस्त हुए
पा गुरुवर का शुभ वरद हाथ॥

सद्यः पूछे—"क्या बात हुई ?
क्यों दीख रही यह अश्रुधार?
राजा न कभी साहस खोता
तुम तो समर्थ साहित्यकार"॥

क्या बतलाऊँ, हे पूज्य देव!
तीनों नाटक हो गए नष्ट।
आपको सुनाया जो मैंने
जल राख हो गए यही कष्ट॥

वाणी की थाती चली गयी
अब तो सब कुछ लग रहा व्यर्थ।
मेरे सम्बल वे ग्रन्थ दिव्य
भावों के वाहक थे समर्थ॥

जल गए ग्रन्थ हा! महा खेद
सुधियो के वे अनमोल रत्न।
विद्वज्जन जिनकी रक्षा-हित
करते हैं हर सम्भव प्रयत्न॥

सच, ग्रंथ जाग्रत देव तुल्य
श्रद्धा-आस्था के अमित सत्व।
वे लोक-तमस-भ्रम-मोह हरें
बन निर्मल पूनम चन्द्र तत्त्व॥

जब काल-चक्र तमसावृत हो
तब आर्ष ग्रंथ देता प्रकाश।
होता इनसे ही तत्त्वबोध
मिटती जड़ता, होता विकास॥

साहित्यकार को कृति लगती
प्रिय सुत समान अनमोल रत्न।
उद्विग्न न बन, मत हो हताश
फिर लिख डालो करके सुयत्न॥

हैं याद कथानक मुझे सभी
जिनको खोकर तुम हुए क्लांत।
मैं बोल रहा, तूँ लिख झटपट
जिससे हो तेरा चित्त शांत॥

हो गयी बलवती वत्सलता
शङ्कर भूले निज स्नान-ध्यान।
गुरु-शिष्य अहर्निश ज़ुटे रहे
जब तक न मिल गया समाधान॥

बन गए कथानक नाटक के
गुरु श्रीमुख निःसृत आर्ष वाक्य।
जो तथ्य रहे भूले भटके
लिपिबद्ध हुए सब यथावाच्य॥

भाषा संयमित सुष्ठुशैली
लालित्य युक्त कृति का स्वरूप।
बन गयी कल्पना सुन्दरतम
यह देख हुए कृतकृत्य भूप॥

श्रद्धा से गुरु पद शीश नवा
बोले नृप, "हे आचार्यवर्य !
की कृपा आपने, मुझे मिला
जीवन का विस्मृत ऐश्वर्य॥

अज्ञान गहन की तमस रात्रि
दीखें जिसमें तारे न चाँद।
वह ज्ञान-रश्मि देता बिखेर
सब भ्रान्ति भगाता पूज्यपाद॥

सद्गुण, सच्चिन्तन, सत् स्वभाव
श्रम, सहिष्णुता का यह प्रपात।
अवगुण, दुश्चिंतन, असत् रूप
दुष्कर्म-भाव पर करे घात॥

संस्कृति सुबीज-अङ्कुरण हेतु
गुरु मेधा जल सींचते नित्य।
सद्भावों के बन कुशल कृषक
भण्डार भरे मङ्गल सुकृत्य॥

मैं किंकर्तव्यविमूढ़ तात!
हूँ अति कृतज्ञ, हे पूज्यपाद।
जो कुछ है आज मिला मुझको
वह सब इन चरणों का प्रसाद॥

गुरु ब्रह्मा विष्णु महेश तुल्य
गोविन्द मिलाने में समर्थ।
यह तथ्य बताया है जिसने
उसके आगे सब तर्क व्यर्थ॥

जग नहीं भूल सकता कदापि
वह विश्वामित्र पवित्र नाम।
जिनके शुभ आशीर्वादों से
बन गए राम सौन्दर्य धाम॥

युग-युग तक हम क्यों भूलेंगे
गुरुवर सांदीपनि पुण्यधाम।
पा जिनकी सेवा का प्रसाद
नित वन्द्य जगद्गुरु हुए श्याम।।

थक जाय भले ही काल-चक्र
पर याद रहेंगे परशुराम।
विस्मृत होंगे क्यों वीर कर्ण-
गुरु-सेवक, कुन्ती-सुत ललाम।।

गुरु-ज्ञान-वह्नि में हो प्रविष्ट
जो शिष्य स्वयं को मान हव्य।
कुन्दन बनकर निकलेगा वह
अविजेय द्रोण का एकलव्य'' ।।

अब कहाँ तिरोहित हुआ हाय!
उन गुरुओं का पावन प्रताप।
दिग्भ्रान्त शिष्य मानते आज
उपदेशों को कोरा प्रलाप ।।

परिवेश भले ही बदले पर
है नहीं बदलता यह विधान।
आदर्श लुप्त, जन महाक्लान्त
पीड़क बनता यह वर्तमान।।

द्विजवर समर्थ गुरु रामदास
के शिष्य शिवाजी थे सुजान ;
जिनके पौरुषबल से श्रीहत
भारत के वैरी, रहे ध्यान।।

प्रेमामृत जिसने बरसाया
मानवता का पूजक अनन्य।
सन्मार्ग प्रदर्शक अवतारी
ज्ञानी गुरु नानक देव धन्य।।

कुछ अनाचार के पोषक बन
सम्प्रति जो गुरु करते कुकर्म।
ढोंगी गीदड़ सब बदल वेश
ये ओढ़ चुके हैं व्याघ्र चर्म।।

सुख-भोग-विलास प्रदर्शन ही
शिक्षा जग के बन गए साध्य।
बेकारी नित बढ़ती रहती
संघर्ष-द्वेष का रहा राज्य॥

सद् ज्ञान-दान में जुटे रहें
ऐसे गुरुवर हो गए गुप्त।
गुरुकुल की बातें हुईं स्वप्न
गुरु-शिष्य भाव हो गए लुप्त॥

सन्मार्ग बतायें जन-जन को
अब होंगे गुरुवर कहाँ प्राप्त ?
सर्वत: शिष्य उत्थान हेतु जो
करते निज जीवन समाप्त॥

उत्कृष्ट वेद उपनिषदों के
स्वाध्याय पीठ हो गए लुप्त।
शारदा हतप्रभ सिसक रही
भारत का है सद्ज्ञान सुप्त॥

गुरुजन से शिष्य समादृत हों
जब रहे परस्पर प्रेम सत्त्व।
सौन्दर्य-बोध वह पां जाये फिर
बने राष्ट्र का अमित सत्त्व॥

शिक्षा में राजनीति चलती
जिसमें अनीति है वर्तमान।
अनुशासन, शील, सुसंयम का
शिक्षक न करें अब तनिक ध्यान॥

दैवी सम्पति नगण्य बनी
विस्मृत गुण श्रद्धा सदाचार।
हो चुकी हेय संस्कृति अपनी
प्रतिपल बढ़ता अब कदाचार॥

शुभ सत्य, अहिंसा, प्रेम, दान,
श्रद्धा, सहिष्णुता का अभाव।
पूजन-अर्चन में अरुचि बढ़ी
है ह्रासमान गुरु-भक्ति-भाव॥

नैराश्य, क्षोभ, आक्रोश युक्त
है शिष्य हतप्रभ, विरत ज्ञान।
अब युवा-समस्या विकट बनी
आचार्य सुझाते समाधान ॥

प्रभु से प्रदत्त आलोक-रश्मि
हैं वेद, ज्ञान के परम धाम।
वेदाङ्ग शास्त्र उसके अवयव
तन-मन जिससे होता ललाम ॥

वेदानुकूल हो शुभ विचार
उससे परिचालित जगत् कार्य।
तब राम राज्य छा जाएगा
बतलाते हैं शङ्कराचार्य ॥

जो छात्र ज्ञान-हित जाग उठे
अपने शरीर का करे होम।
गुरु-वरद हस्त पा सिद्ध बने
थे मंत्र फूंकते सूर्य सोम ॥

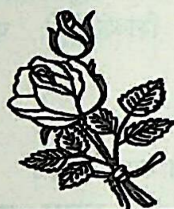
मण्डन के गुरुवर पद्म पाद
शङ्कर को सब कहते महान्।
जिनसे दिग्दर्शित अनुगामी
शिष्यों ने पाये आत्म ज्ञान॥

गुरु-सेवा का सद्यः प्रभाव
पा स्वस्थ हुआ कुष्ठी उदंक।
प्रज्ञाशाली वह मेधावी
अध्यात्म गगन का शुचिमयंक॥

गुरु-भास्कर से मन-गगन दीप्त
साक्षात् विष्णु के परम अंश।
वाणी पीयूष की वर्षा से
वे सदा मिटाते जगत् दंश॥

गुरु अस्थि मांस का पुन्ज मात्र
जो कहे नहीं वह कभी क्षम्य।
है दिव्य-ज्योति का संवाहक
आलोक मूर्ति, शाश्वत प्रणम्य॥





नवम पुष्प ९

'खेले काल उमर घट रीते'

"डुकृञ्करणे, डुकृञ्करणे" राग बेसुरा कौन टेरता ?
जीर्ण दीप की क्षीण ज्योति में किन शब्दों के अर्थ हेरता ?
शङ्कर गए निकट, पूछा—"क्यों आप रटें व्याकरण-सूत्र को?
वयोवृद्ध होने पर भी क्यों इतनी लगन बतायें मुझको" ॥

"भाषा-शुद्धि हेतु बोला वह निसिदिन 'डुकृञ्' रहता रटता।
आयु न बाधक बनती इसमें वाणी का परिमार्जन करता" ॥
"जीवन के अंतिम दिन में क्यों ठानी यह व्याकरण रटाई" ?
"शास्त्रों का परिशुद्ध ज्ञान ही भव सागर की सुलभ दवाई" ॥

भले पढ़े हों शास्त्र बहुत से वेद पुराण व्याकरण ज्ञाता।
ईश-भजन में चित्त न रमता वह नर जड़मति जाना जाता ॥
आप पके फल जगत्-वृक्ष के अनायास कब चू जाएंगे।
राग-त्याग से भजन-भाव हो पुण्य लाभ सद्गति पाएंगे ॥

अष्टाध्यायी और कौमुदी से वाणी-परिमार्जन सम्भव।
जगत्-चातुरी भले प्राप्त हो भक्ति-भाव का कभी न उद्भव॥
'भजगोविन्दम्'' अमृतकुम्भ है सात्त्विक भाव जगाने वाला।
वेद-सार का यह व्याख्याता जगत-प्रपञ्च मिटाने वाला॥

भजगोविन्दम् ऐसा मुद्‌गर विषयी भोगी को समझाता।
यह विचित्र चाबुक है श्रीमन् भ्रमित पथिक को राह दिखाता॥
ललित सुबोध मोहमुद्‌गर ही मोह, मान, भय दूर भगाये।
चर्पट पंजरिका पुनीत अति 'भजगोविन्दम्' भाव जगाये॥

भज गोविन्दम् भजगोविन्दम्
भजगोविन्दम् भाई रे।
रटे शास्त्र रक्षा न करेंगे
मृत्यु निकट जब आई रे॥

मूढ़! मोड़ मन-धन-सञ्चय से,
हो सुबुद्ध जग-राग मिटाओ।
पाओ धन जितना स्वकर्मवश
उतने में आनन्द मनाओ॥

मोहक नख-शिख रमणी तन पर
मायावश मत मन भरमाना।
मांस-वसा के ये विकार हैं
मन को बार-बार समझाना ।।

जल ज्यों दुलके पद्मपत्र से
जीवन त्यों क्षण भङ्गुर जानो।
रोग-दुःख अभिमान जर्जरित
सकल लोक शोकातुर मानो ।।

जब तक धन-अर्जन की क्षमता
स्वजन सभी आदर देते हैं।
काया जर्जर हो जाने पर
फिर क्या कभी खबर लेते हैं?

जब तक श्वाँस बसा है तन में
कुशल-कामना दुनिया करती।
उड़ जाने पर प्राण पखेरू
अपनी प्राण प्रिया भी डरती ।।

बचपन बीता खेलकूद में
युवती के संग गई जवानी।
वृद्ध हुए चिन्ता में डूबा
ब्रह्म-प्राप्ति में लगा न प्राणी ।।

कौन प्रिया है कौन पुत्र है
कैसी यह दुनिया विचित्र है ?
कहाँ आ गए, किसके हो तुम
सतत चिन्त्य यह तत्त्व मित्र है ।।

सत्संगति से मन वैरागी
फिर विराग मन-मोह भगाए।
मोह भगे मन-तुरग न भागे
बंधन मुक्त जीव हो जाए ।।

उमर ढली फिर कहाँ वासना
जल-सूखा फिर ताल कहाँ है ?
गाँठ न पैसा फिर कुटुम्ब क्या
ज्ञान जगे जंग-सार कहाँ है?

धन-जन-यौवन पर मत गरजो
काल हरे सब कुछ पल भर में।
यह दुनिया माया का मेला
रे मन! पैठ ब्रह्म के घर में॥

दिवस-यामिनी, शाम-सबेरा
शिशिर बसंत लगाये फेरा।
खेले काल उमर-घट रीते
झूठी आश जमाये डेरा॥

कान्ता-तन-हित क्यों कर चिन्ता
तर्क न कर प्रभु सूत्रधार है।
क्षण भर की सत्संग-नाव से
सागर होता जीव पार है॥

जटा बढ़ाये, माथ मुड़ाये
केश नोचाये, बसन गेरुआ।
रहते आँखें न देखे मूरख
पेट हेतु बनता बहुरूपिया॥

जर्जर काया, श्वेत केश सब
दंत विहीन पोपल मुख है।
लकुटी का ही रहा सहारा
आशा से होता न विमुख है॥

दिन में धूप आग को तापे
ठिठुर ठिठुर कर रात बिताई।
करतल भिक्षा तरुतल रहकर
आशा फिर भी नहीं पराई॥

पग-पग नापो तीरथ सागर
व्रती बनो, धन-धान्य लुटाओ।
बिना ज्ञान के मुक्ति असम्भव
सौ-सौ जन्म भले ही पाओ॥

देवालय तरुछाया नीचे
भूमि शयन तन पर मृग छाला।
भोग-विमुख त्यागी वैरागी
सदा सुखामृत पीने वाला॥

योगी हो अथवा भोगी हो
संग मिला या संग नहीं है।
जिसका चित्त ब्रह्म में रमता
पाता परमानन्द वही है॥

गीता का हो स्वल्प परायण
गङ्गाजल लव कणिका सेवन।
एक बार भी हरि अभ्यर्चन
होता यम से निर्भय जीवन॥

जीना-मरना, मरना-जीना
फिर-फिर जननि-जठर में आना।
यह भव-सागर दुर्गम भारी
प्रभो मुरारे! पार लगाना॥

हम तुम कौन कहाँ से आए
कौन पिता है कैसी माता ?
यह दुनिया है केवल सपना
झूठा जीव-जगत का नाता॥

रमणी-भोग प्रथम सुख देता
फिर तन होता व्याधि ग्रस्त है।
मृत्यु-शरण है जाना निश्चित
फिर भी पाप कर्म में रत है॥

तुम में, हम में, जगत विष्णुमय,
क्रोध द्वेष तजकर अपनाओ।
सब में अपने को ही देखो
भेद-बुद्धि तज, हृदय लगाओ॥

राग-द्वेष सब त्याग, शत्रु-सुत,
मित्र-बन्धु का भेद मिटाओ।
प्रभु पद यदि झट पाना चाहो
जन-जन में सम भाव जगाओ॥

काम, क्रोध, मद, लोभ मोह तज
"आत्मरूप" अपना पहचानो।
आत्म ज्ञान से हीन मूर्ख ही
रौरव का दुख सहता जानो॥

जपो सहस्त्रनाम गीता को
प्रतिपल श्रीपति के गुण गाओ।
सत्संगति में चित्त लगाकर
दीनों में धन सदा लुटाओ।।

सब अनर्थ है धन के कारण
सुख न तनिक उससे मिल पाता।
निज पुत्रों से भय धनिकों को
जग-व्यवहार यही बतलाता।।

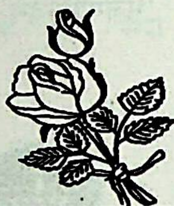
प्राणायाम और इन्द्रिय-जय,
नित्य-अनित्य-भेद तुम जानो।
जप की ज्योति शलाका लेकर
आत्मरूप शाश्वत पहचानो।।

गुरु-पद पद्म-प्रसाद प्राप्त कर
झट भव सागर तर जाओगे।
इन्द्रिय-मन पर संयम रखकर

हृदय मध्य हरि को पाओगे।।

'डुकृञ्' रटता मूढ़ वृद्ध वह
समझ गया क्या सार-तत्त्व है।
जग-जीवन-सार्थकता हित ही
'भज़गोविन्दम्' महामंत्र है।।





दशम पुष्प — १०

है हिन्द ही सबका शरण

भारत धरा का स्वर्ग है निज श्रेष्ठता बतला रहा।
इस तथ्य को चिन्तक विदेशी मैक्समूलर ने कहा।।
सद्धर्म, संस्कृति, दिव्य दर्शन फूलते-फलते यहाँ।
आलोकदाता राष्ट्र ऐसा विश्व में पाये कहाँ ?

सर वालटर रेले कहें—'भारत' विलक्षण नाम है।
जल-प्रलय के उपरांत निर्मित सुष्ठु मनु का धाम है।।
आदम तथा हौआ अदन से चल यहाँ पर आ गए।
"है हिन्द ही सबका शरण", संदेश शुभ बतला गए।।

इतिहास में श्री टाड ने जो लिख दिया सम्मान्य है।
अस्तित्व भारत का प्रथम ही विश्व में अनुमान्य है।।
अब पुष्ट है यह तथ्य तो सद्ग्रंथ के सब कांड में।
ब्रह्मा विनिर्मित आदि भारत राष्ट्र है ब्रह्माण्ड में।।

यूरेशिया में शान्ति-रक्षक राष्ट्र कौन पवित्र है ?
दुर्बल पड़ोसी का सहायक सबल का जो मित्र है ॥
है दिन नहीं वह दूर जब जग सर झुकाएगा यहाँ।
पाश्चात्य चिंतक-कथन को हम सत्य मानेंगे यहाँ ॥

हम जानते थे सृष्टि-क्रम उद्भव-विकास-प्रकाश को।
अपनी सुभेदी दृष्टि से हम देखते आकाश को ॥
योगी यहाँ बतला चुके हैं पूर्व में जिस सत्त्व को।
विज्ञान वेत्ता ढूढते हैं आज भी उन तत्त्व को ॥

सारी धरा थी निज नियंत्रण में उदधि तो दास था।
आत्मानुशासन योग से आकाश पर भी वास था ॥
विज्ञान था हस्तामलक अन्तर्जगत तो ज्ञेय था।
"जड़" से रहे सब दूर चेतन हम बनें यह ध्येय था ॥

आगार समता शांति की बनती यही अपनी मही।
मानव-कलाएं नित्य प्रति उत्कृष्टता पाती रहीं ॥
भौतिक प्रभा समृद्ध पश्चिम क्यों निहारे पूर्व को ?
जीवन-जलज-सुविकास हित क्यों स्मरण संस्कृति सूर्य को ॥

शत स्वर्ग से बढ़कर सुशोभित जन्म-भू अपनी यही।
है इसलिए भ्राता लखन! अति प्रिय सदा लगती रही॥
सब याद करते क्यों नहीं श्री राम के उद्गार को।
इस देव निर्मित देश को, उत्कर्ष के आगार को॥

संस्पर्श हिमगिरि प्राप्त कर जो हिन्द सागर तक बढ़ा।
यह द्वीप जम्बू-रत्न भारतवर्ष जिह्वा पर चढ़ा॥
हो जन्म भारत में पुनः है मोक्ष की सम्भावना।
सुख-स्वर्ग पाकर अनवरत सुर की रही क्यों कामना ?

सम्पूर्ण धरती के विवेकी प्राप्त करते ज्ञान को।
वे पूजते रहते सतत भारत धरा-विज्ञान को॥
सागर चरण धोये सदा, नगराज जिसका ताज है।
राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों से दीप्त सकल समाज है॥

स्वर्णिम प्रभात जहाँ हुआ संस्कृति जहाँ रमणीय है।
आकाश-प्राङ्गण सम सदाशयता जहाँ मननीय है॥
करुणा बहाती सरित् सब गाम्भीर्युयुत सागर जहाँ।
पर्वत सिखाते धीरता वह देश भारत है यहाँ॥

आदर्श ज्ञानालय सदृश तप में निरत यह देश है।
सब रत्न का भंडार है ऐश्वर्यमय परिवेश है॥
सुर से सुपूजित राष्ट्र जिससे गूंजती है ध्वनि यही।
आश्रय बनी असहाय हित गरिमामयी भारत मही॥

रत्नेश का वरदान भारत टूटता क्यों ज़ा रहा?
नित धर्म, भाषा, क्षेत्र का आधार पाकर बँट रहा॥
पारस्परिक सौहार्द अब तो पुष्प गूलर मान्य है।
निज स्वार्थ साधन प्रेम है, थाती मनोमालिन्य है॥

अति उग्रता, उद्दण्डता से सकल जन दिग्भ्रांत हैं।
संघर्ष, कटुता, कलह से क्यों हो रहे सब क्लांत है॥
विद्वेष ही अब शेष है, क्षर हो रहा है क्षेम का।
होने लगा है अतिक्रमण राष्ट्रीय-निष्ठा-प्रेम का॥

अब गृह-कलह से भूमि यह रौंदी निरंतर जा रही।
जीवन बना सबका दुखद आतंक मिटता है नहीं॥
ईर्ष्या, घृणा के पंक में धंसते चले हम जा रहे।
ऊर्जा घटे, नित दुर्दशा, सुख-शांति को खोते रहे॥

जितने पुरुष उतने ही पथ हर क्षेत्र में दिखता यहाँ।
है फूट की जड़ सुदृढ़, दम्भी नाचते पग-पग यहाँ।।
पाखण्ड और प्रलाप में लिपटे मनुज की क्या दशा?
कच, कुच, कटाक्ष, शृंगार, भोग विलास की छायी नशा।।

मत, पंथ, मिथ्याचार ही अब धर्म माना जा रहा।
अनुदारतामय स्वार्थ नद में डूबता जन-मन रहा।।
हाँ, इसलिए सुख शांति मिटती जग गया दुर्भाग्य है।
जर्जर सभी अब हो गए सोता रहा सौभाग्य है।।

वाणी सुवेदी पर यहाँ उद्दण्डता का राज क्यों?
व्यवसाय ही तो बन गया है धर्म अपना आज क्यों?
पंडे पुरोहित निंद्य कर्मों के बने आचार्य हैं।
संघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष हित अड़ना उन्हीं के कार्य हैं।।

विद्रूपता जो आज है, वह पूर्व में भी थी कभी।
आचार्य शङ्कर स्पर्श पा, सुधरी परिस्थितियाँ सभी।।
इतिहास से हम सीख लें, जीवन प्रफुल्लित हो सदा।
संघर्ष मिट जाए यहाँ, शुभ शान्ति विलसे सर्वदा।।

जब जातिगत संघर्ष से सुख शांति छू मंतर हुई।
ब्राह्मण समझते देव निज को अन्य को दुर्गति हुई॥
तब 'तत्त्वमसि' उद्घोषणा से भाव-साम्य दिखा दिया।
"सब ब्रह्म के ही अंश हैं", कह जाति-भेद मिटा दिया॥

आचार्य कहते गोत्र से कोई अधम न वरिष्ठ है।
सत्कर्मरत जो उच्च वह, दुष्कर्मरत पापिष्ठ है॥
व्यभिचार; हत्या और मदिरापान यदि ब्राह्मण करें।
उस दुष्ट वंचक व्यक्ति को संसार अपमानित करें॥

जो दूर पूरब असम के सामंत पक्के शाक्त थे।
पाखण्डरत जादू दिखाये, वासना में व्याप्त थे॥
सम्मोहनोच्चाटन क्रिया में दक्ष जन से कह दिया।
उनसे विनय के साथ श्री आचार्य ने बतला दिया:

"अज्ञान से आसक्ति फिर भ्रम-जाल ही बढ़ता रहा।
मन-मीन भोग-उदधि फंसा सत्कर्म से हटता रहा॥
आसक्तियों को त्यागकर सुख-शांति पाएँगे यहाँ।
सद्ज्ञान, श्रद्धा ध्यान से जीवन सुधारेंगे यहाँ॥

होये सतत सत्कर्म पावन धर्म ही आधार हो।
तो प्रभु वरद पायें सभी जीवन सुखद सम्भार हो॥
उपभोग में जो दक्ष, कंचन-कामिनी नेही बने।
कर्त्तव्य-पथ से विलग हो अपधर्म में है क्यों सने''?

सामान्य जन रस-सिक्त वाणी से जहाँ मोहित हुए।
शुभ शांति रसमय नीति सुन उन्मत्त तो श्रीहत हुए॥
सामन्त के संकेत पर कापालिकों के घात से।
गुरुवर बचे सौभाग्यवश उस कुटिल झंझावात से॥

आचार्य की दृढ़ता, सहजता, प्रेम का सागर बहा।
पाखण्ड का मल धुल गया, सज्जन हुए हर्षित महा॥
अभिमान का परदा हटा, सद्ज्ञान ज्योति जली वहाँ।
मालिन्य छू मन्तर हुआ, सद्भाव प्रसरित था वहाँ॥

चार्वाक नास्तिक थे बढ़े जन-मन व्यथा से व्याप्त था।
विध्वस्त खंडित धर्म अपना दुर्दशा को प्राप्त था॥
जब बौद्ध बाह्याचार में निज सत्त्व को खोते रहे।
वे वाग्वैभव पर सदा उन्मत्त हो लड़ते रहे॥

जो तर्क और वितर्क में पटु बाल-खाल निकालते।
वाणी-विलासी बौद्ध से वैदिक रहे जब हारते॥
आचार्य के उपदेश से सब तर्क-जाल मिटे वहीं।
भावोपवन में कर्म की अद्भुत लता विलसी वहीं॥

वैदिक तथा जब बौद्ध में पारस्परिक विद्वेष था।
आचार्य शङ्कर-आगमन सत्यं शिवं संदेश था॥
उनकी यही उद्घोषणा सद्भावना की लहर थी।
संस्कृति-समन्वय की सुधा बरसी धरा उस प्रहर थी:

"सिद्धार्थ ने बुद्धत्व से आलोकमय सबको किया।
वे विष्णु के अवतार थे, सबने उन्हें अपना लिया॥
उनकी अहिंसा, शील, शुचिता पूर्णतः जगमान्य है।
उस विश्व-नेता से बनी अपनी धरा सम्मान्य है॥

पावन 'गया' उनसे अलंकृत तीर्थ हम सबका बने।
श्रद्धा समर्पित हो पितर को पुण्य क्षेत्र सभी चुने॥
ये बौद्ध अपने ही सुहृद क्यों भिन्न हो सकते कभी?
हम आर्य की सन्तान हैं, सम बुद्धि रखते हैं सभी"॥

शिव, अदिति, गणपति, शेषशायी, शक्ति के पूजक लड़े।
"हम श्रेष्ठ हैं सब अधम हैं" के भ्रान्ति-नद में क्यों पड़े?
"'ये देव अपने पूज्य हैं", यह घोषणा आचार्य की।
पंचायतन-पूजन-प्रथा प्रारम्भ कर सत्कार्य की।।

सर्वज्ञ अन्तर्व्याप्त शिव देवाधिदेव सुपूज्य हैं।
प्रभु विष्णु जो पर्याय उनके वे सदैव प्रणम्य हैं।।
मानें इन्हें हम भिन्न तो बस मूढ़ता पहचानिए।
इस ब्रह्म के ही रूप को तो एक तत्त्व बखानिए"।।

लक्ष्मी रहीं आराध्य जिनकी, आर्य ने उनसे कहा।
विभु जगत पालक विष्णु की सेवा रमा का व्रत रहा।।
लक्ष्मी उपासक, विष्णु सब जब दीन-पालन-व्रत धरें।
तो दान-सेवा-भाव से निज सफल धन जीवन करें।।

ज्योति, शृंगेरी, शारदा मठ और गोवर्धन रहे।
आगम निगम के केन्द्र से सत्शास्त्र सदन बने रहे।।
आलोक फैलाते सतत सद्ज्ञान की व्यवहार की।
जीवन सुधा सरसे सदा हो कृत्य पर उपकार की।।

जब चार कोनों पर यती ने चार धाम बना दिया।
तो एक धागे में पिरोकर राष्ट्र-एका ला दिया।।
अपनी सुसंस्कृति-दुर्ग के प्रहरी बने ये धाम हैं।
भारत अखंडित है सदा, ध्वनि गूंजती अविराम है।।

छोटे बड़े शिक्षित अशिक्षित शूद्र ब्राह्मण क्यों यहाँ ?
संग बैठकर ही पंक्ति में तो भात खाते हैं जहाँ।।
सब एक और अभिन्न हैं उद्घोष शुभद ललाम है।
समभाव समता पाठ सिखलाता पुरी का धाम है।।

श्री मिश्र मंडन-प्रभा से गौरवमयी मिथिला मही।
सर्वस्व शृंगेरी बने आचार्य निर्देशन यही।।
उत्तर दिशा मठ शोभता दक्षिण-दिशा-अवतार से।
चैतन्य भारत बंध गया एकात्मता के तार से।।

आचार्य के आदेश से ऐसे मठाधीश्वर बने।
जो पूर्ण वैदिक, शास्त्रवेत्ता, तत्त्व को रहते गुने।।
ध्यानस्थ योगी, राष्ट्र-सेवा-भक्ति-सुरसरि में बहे।
संस्कृति समुद्धारक बने, सन्मार्ग पर चलते रहे।।

काशी अयोध्या द्वारिका मथुरा सदा ही सेव्य क्यों?
केदार धाम प्रयाग कांची नगर अति उल्लेख्य क्यों?
रामेश्वरम् कन्नौज माया तीर्थ सब सम्मान्य हैं।
इनसे सुशोभित एकता के सूत्र जग अनुमान्य हैं।।

सर्वात्म में निज रूप पावें, भेद मानव में कहाँ ?
जब हृदय हो उन्मुक्त तो संकीर्ण, भाव मिटे यहाँ।।
सद्ज्ञानियों में श्रेष्ठ मुनि ने भाव साम्य जगा दिया।
उनसे विषमता बिलखती, वैविध्य भाव भगा दिया।।

आचार्य ने बतला दिया राष्ट्रीयता है क्या सुनो।
क्षेत्रीयता को त्याग कर सम्पूर्णता का अब गुनो।।
सङ्कीर्णता, विघटन, विखण्डन ज्वर यहाँ से दूर हो।
राष्ट्रीय एका प्रेम पनपे भाव शुभ भरपूर हो।।

कुछ तुच्छ तिनके मिल गए रस्सी बनी दुर्जेय है।
बँधकर उसीमें गज हतप्रभ, जो रहा अविजेय है।।
इस भांति जन-जन एकता, सौहार्द-भाव अखंड हो।
तो राष्ट्र सबल समर्थ हो, समृद्ध और प्रचण्ड हो।।

घोड़ा समर्पण मैं करुँ, गजराज की ही बलि चढ़े।
अथवा कहें तो सिंह को मारूँ चरण पर वह चढ़े॥
सुन भक्त के प्रस्ताव को दुर्गा कहीं झट से यही।
बलि योग्य बकरा मात्र है यह मान्यता मेरी रही॥

इस मान्यता से स्पष्ट है असहाय के घातक सभी।
हो शक्तिच्युत हम कीर्ति-रक्षा कर नहीं सकते कभी॥
जीवन सफल मानो वही जो शील-शक्ति प्रसूत हो।
वह शक्ति सार्थक मानिए जब ऐक्य हित उद्भूत हो॥

जन-ऐक्य से समुदाय का फिर राष्ट्र का उत्थान हो।
जब राष्ट्र-सिर ऊँचा रहे तो विश्व में सम्मान हो॥
यह देश अपना प्रेम, करुणा त्याग की शिक्षा कहे।
औदार्य-दर्शन-मंत्र गुञ्जित भूमि यह अपनी रहे॥

ये कोटि सिर, ये कोटि भुज ये उदर नेत्र असंख्य से।
निर्मित समाज विराट नर दीपित रहे वैविध्य से॥
ज्ञानी पुरुष हैं मुख बने इसकी भुजाएँ शूर हैं।
हैं [illegible] जाते पैर ही मजदूर हैं॥

सबके विचार समान हों, फिर एक सा व्यवहार हो।
संगठन पक्ष समाज का सब भांति तब स्वीकार हो॥
सुगठित समाज बना रहे तो राष्ट्र का सुविकास हो।
हो राष्ट्र-प्रेम सुपुष्ट तो सर्वत्र एकाभास हो॥

सब राष्ट्र आतुर संघ-हित पर हम अभागे ही रहे।
परिपुष्ट संघ-विमुक्ति की नव कामना करते रहे॥
जब प्रान्त, भाषा, जाति, मत, गुट, पंथ ही आधार है।
तो खो गई है शक्ति अब धिक्कार है, धिक्कार है॥

उत्तर दिशा का राज्य जब दक्षिण दिशा से कट रहा।
नित आर्य और अनार्य का संघर्ष था बढ़ता रहा॥
विद्वेष-भाव भगा दिया आचार्य ने घोषित किया।
संघर्ष सत्यानाश का है स्रोत यह बतला दिया॥

कश्मीर से कन्याकुमारी तक धरा पावन यही।
पंजाब से बंगाल तक की भूमि मन-भावन रही॥
परमात्मा की सुप्रिया ही भूमि भारतवर्ष है।
पग-पग प्रदीपित प्रकृति पौरुष का यहाँ उत्कर्ष है॥

नगराज आध्यात्मिक सुछवि का अप्रतिम अवलम्ब है।
भारत विमल यश को सुनाती सरित बनकर अम्ब है।।
बुद् बुद् तरंग भंवर समेटे जलधि एकाकार है।
आकाश तो अद्वैत भूमा का बना आगार है।।

यह देवता द्वारा विनिर्मित राष्ट्र अपना धन्य है।
"यह मातृ भू है देव भू" निष्ठा सहज अनुमन्य है।।
एकत्व दर्शन प्राप्ति ही सब शांति का शुभ मूल है।
कण-कण निनादित एकता संघर्ष के प्रतिकूल है।।

परिवार, ग्राम, प्रखंड एवं प्रान्त से ही देश है।
राष्ट्रीयता से ही बढ़े बन्धुत्व भाव विशेष है।।
आत्मीयता का भाव पनपे, द्वेष मिट जाते यहाँ।
मैत्री बढ़े जिससे निरंतर एकता स्थापित यहाँ।।

इस पुण्य भारत भूमि हित सबका प्रबल अनुराग हो।
साहित्य, संस्कृति हो समादृत पूर्वजों में राग हो।।
हे बन्धुओ! तुम एक हो, धरती तुम्हारी एक है।
यह दृष्टि तो ही नेक है।।
यह गगन अपना एक है,

शिवरात्रि व जन्माष्टमी के पर्व शक्ति सुपोत है।
ये कुम्भ, वैशाखी, जयंती एकता के स्रोत हैं॥
होली, दिवाली, दशहरा जो श्रावणी त्यौहार हैं।
सब जाति के सौहार्द हित बनते सदा पतवार हैं॥

मानस-कलुष प्रक्षालनार्थ बने सभी त्यौहार हैं।
देखे इन्हीं के मूल में शुभ ऐक्य मंगलधार है॥
व्रत, यज्ञ, संगम-धाम-दर्शन मूल जीवन जानिए।
जीवन बने समरस सिखाते पाठ उत्तम मानिए॥

ये यज्ञ अपने "इदं न मम" (त्याग शिक्षा) कह रहे।
यह त्याग किसकी ? स्वार्थ की, संघर्ष की ऋषिवर कहें॥
सङ्कीर्णता को जब मिटाकर धवल मानस पाइए।
अपनी सुसंस्कृति हो प्रतिष्ठित एकता पनपाइए॥

हाँ, एक 'अल्लाह' मुस्लिमों में पूज्य माना जा रहा।
फिर एक 'गाड' ईसाइयों में एकता को ला रहा॥
पर हैं अनेको देव भारत में अतः संघर्ष है।
ऐसा समझना बुद्धि का अपकर्ष है, अपकर्ष है॥

जनतंत्र के अनुरूप मन जिसमें रमे उसको भजें।
है सब विराट सुअंश माने भेद-भाव तुरत तजें॥
भिन्नत्व में एकत्व का शोधन हमारा लक्ष्य हो।
उत्कर्ष होगा राष्ट्र का वैविध्यमय यह सत्य हो॥

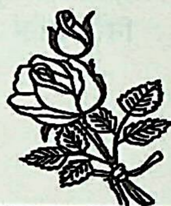
जब एक भाषा, एक मन, तब एकता का भाव हो।
सर्वत्र समता शान्ति का बढ़ता रहे नित भाव हो॥
आचार्य के सिद्धान्त सब सद्भावना-आधार हैं।
संस्कृति-हृदय वे जगद्गुरु अक्षय अमृत भंडार हैं॥

जब वेद शास्त्र पुराण का हो पाठ भारत में अहो।
शुभ-शुचि सुखद सौंदर्य की आभा न छिटके क्यों कहो॥
संतापत्रयशमनार्थ ज्ञानौषधि बिखेरे सर्वदा।
उपकार, प्रेम, सहिष्णुता, संवेदना है सम्पदा॥

है वाङ्मय वरणीय जब सद्भाव की समृद्धि हो।
सद्भाव हो, सहयोग हो तो एकता की सिद्धि हो॥
जो शुभ समन्वय का मधुर संदेश दे साहित्य है।
यदि ऐक्य भाव न ला सके तो जानिए राहित्य है॥

युग पुरुष शङ्कर के सुअर्चन हेतु हम यह ब्रत धरें।
गरिमा बढ़ायें, नित्यप्रति भारत-धरा दीपित करें।।
भू-लोक में गूंजे हमारी जय-जगत की ध्वनि सदा।
बसुधा समस्त कुटुम्ब मानें, हो सुखी सब सर्वदा।।





एकादश पुष्प ११

संस्कृति संरक्षक महाप्राण

केदारनाथ कैलासधाम, उत्तर काशी की महिमा न्यारी।
गढ़ मुक्तेश्वर बना मनोहर, पावन तीर्थ सुमङ्गलकारी।।
पग-पग नापा श्री शङ्कर ने, वेद-विहित सब तत्त्व सुनाया।
सुधा सञ्चरित चतुर्दिशा में, जन-गण-मन आह्लाद समाया।।

उन्नत गिरि शिखरों से निकली जाय जलधि तक गङ्गा माता।
ऋषि मुनियों की आश्रय रूपा भारत की जो भाग्यविधाता।।
हरिद्वार ऋषिकेश धाम में शङ्कर ने की गङ्गा-पूजा।
विश्व-सार सुरसरि प्रति अर्पित संत पथिक का यों स्वर गूँजा—

हरवल्लभा जाह्नवी गंगा
सिंधुगामिनी धवल अम्बरा।
भाग्यवती कल्मष-विमोचनी
पुण्यवाहिनी चन्द्रशेखरा।।

भुवन-ईश्वरी नाग-पुत्रिका
नित्य सुधा शीघ्रगा सुरम्या।
सुधासार, जल, सलिल सुवासा
निरंजना शङ्करी शरण्या ।।

मुक्तिदायिनी तापहारिणी
अतुला जपा जंगमा माता।
पारावार-विहारिणी पूर्णा
देवनदी नन्दिनी अनन्ता ।।

जगत्-मातृ, जगहिता-सपूता
त्रिगुणात्मिका सुघोषा शिवदा।
वसुधाहार विमल जल धारा
विन्दु सरस भव-पत्नि पुंण्यदा ।।

नाना क्लेश कलुष पीड़ित नर
कलि कुठार-हत परम अभागे।
माँ! सुखदायिनी कृपा करो अब
तुच्छ जीव किस मुँह वर माँगे?

रोग-शोक सब पाप हरो माँ!
भगवति पुण्ये तरल तरंगे।
कल्पलता! कामना पूर्ण
कर महिमोत्तुंगे मार्तगंगे ॥

भारत भ्रमण किया यतिवर ने,
शास्त्र-अर्थ दुंदभी बजायी।
वेद-धर्म घर-घर पहुँचाकर,
सदाचरण की अलख जगायी ॥

ईश, केन, कठ तैत्तरीय माण्डूक्य सभी को सरल बनाया।
ऐतरेय छान्दोग्य आदि के मर्मों को सुस्पष्ट बताया ॥
बोधसार, अज्ञानबोधिनी, चर्पटमञ्जरि थे अति प्यारे।
वैराग्य मूल प्रस्थान त्रयी दृग दृश्य ग्रंथ शङ्कर के सारे ॥

क्लिष्ट भाव अति सुगम हो गए व्यास सदृश शङ्कर व्याख्या से।
वाग्विलासी मौन हो गए वाणी की अकाट्य धारा से ॥
कोरे ज्ञानी बनकर शङ्कर आत्मोद्धार नहीं थे साधे।
उपासना के सत्स्वरूप को एक सूत्र में लाकर बाँधे ॥

उदासीन बन आलस करना कर्म-विरति आदर्श नहीं है।
सत्कर्मों हित सदा सजग रहना प्राणी का धर्म यही है॥
सोते रहना, काम न करना, दुश्चिन्ता कलियुगरत ही है।
हरदम ऊँघना सुस्तभाव ही द्वापर युग पहचान यही है॥

उठो, बढ़ो, आगे दौड़ो, सत्कर्म भाव त्रेता बतलाता।
कर्मों के उत्तुंग शिखर पर चढ़ने हित संदेश सुनाता॥
रवि शशि नभ में चलते रहते सरिताएँ कल-कल करती हैं।
गिरि जङ्गल गोदी में लेकर धरती क्यों चलती रहती है ?

पवन निरंतर क्यों बहता है मानव क्यों रुकता, चलता-चल।
गतिमय जग के सकल तत्त्व से उत्प्रेरित हो सारा थल-जल॥
शुद्ध-बुद्ध वह नर-वर है जो काम, क्रोध, मद, मोह मुक्त हो।
श्रेष्ठ कर्म सम्पादन सम्भव मन यदि उत्तम भाव युक्त हो॥

जप, तप, यज्ञ, पाठ-पूजा से शांति अल्पकालिक मिलती है।
ज्ञान योग से अन्तस्तल में निरानन्द कलिका खिलती है॥
क्रोध, घृणा, भय से जो शापित वे न कभी महान हो पाते।
सदाशयी उत्तम मानव ही कर्मठ बन हैं नाम कमाते॥

कर्मयज्ञ पूरा होने पर, सबको प्राप्य सदा मिलते हैं।
जगत वाटिका में आशा के सुमन सदैव खिला करते हैं।।
अल्पावधि में महत् कार्य सम्पन्न हुए श्री शङ्कर द्वारा।
विभव बिखेरा बत्तीस वर्षों भारत का बन उज्ज्वल तारा।।

धरती ही जब क्षीयमाण हो पर्वत खण्ड-खण्ड हो जाये।
यदि अथाह सागर भी छीजे मानव-तन क्यों बदल न जाये।।
जो मानव पर्वत को तोड़े सागर पर निज यान चलाये।
एक समय ऐसा आता है काल-गाल में वह भी जाये।।

शाश्वत गति के परिणतिक्रम में महाप्रयाण हुआ यतिवर का।
दिव्यालोक मिला मानव को शिवपुर वास हुआ शङ्कर का।।
चरैवेति सत्कर्म सुगति हित था निर्मित जीवन मुनिवर का।
मुक्त हुए भौतिक काया से यशस्तूप उन्नत शङ्कर का।।

काँटे चुभते समय-समय पर
नित उड़ती रहती है धूल।
तो भी क्यों न मलिन होता है
भारतीय संस्कृति का फूल?

जग को सभ्य बनाने वाले
शङ्कर थाती बने महान।
विश्ववन्द्य हम उनको पाकर
कीर्ति-ध्वजा अपनी द्युतिमान॥

भव्य भाव-भण्डार पुरुष वह
सत्य शील के अक्षय धाम।
जन-मन-उन्नायक थे शङ्कर
उस दिव्य ज्योति को शत प्रणाम॥

दार्शनिक जंगत के मूर्द्धा जो
अल्पायु, कार्य पर्वताकार।
भारत अखण्ड उनके कारण
उस दिव्य धाम को नमस्कार॥

मानवत्ता के जो उद्गाता
गीता-गायत्री-सूत्रधार।
करुणावरुणालय हैं शङ्कर
प्रेमामूल को नमस्कार॥

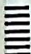
जग को ज्योतिष्मान बनाती
जिनकी मंगल कीर्ति-प्रसूति ।
शङ्कर गुरु की चरण-रेणु है
भारतीय जन-भाल विभूति ।।

सम्प्रति संकटापन्न जग में
नित बढ़ता है मानव-प्रमाद ।
सत्कर्म ज्ञान विलसित होगा
पा शङ्कर अनुकम्पा-प्रसाद ।।

शङ्कर-आदर्शों पर चलकर
पूज्य हुए हम, बने महान् ।
कोटि नमन उस ज्योति-पुञ्ज को
जिनसे बढ़ा राष्ट्र-सम्मान ।।









डॉ. अर्जुन तिवारी



प्रकाशित ग्रन्थ : १. स्वतन्त्रता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता
२. आधुनिक पत्रकारिता
३. जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता
४. हिन्दी पत्रकारिता का वृहद् इतिहास
५. स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता और दशरथ प्रसाद द्विवेदी
६. हिन्दी पत्रकारिता और भावात्मक एकता
७. भारतीय पत्रकारिता एवं राष्ट्रीय चेतना
८. बाबा राघव दास
९. भज गोविन्दम्
१०. शंकर रत्नमालिका
११. ब्रह्मर्षि देवराहा दर्शन
१२. शिवमहिम्नस्तोत्रम्
१३. सद्भाव-सेतु शंकर (प्रबंध काव्य)
१४. कृषि ग्रामीण विकास पत्रकारिता
१५. इतिहास निर्माता पत्रकार

मुद्रणाधीन ग्रंथ : १. गांधी की पत्रकारिता
२. द सांग डिवाइन

सम्पादन : 'शाश्वत शिक्षाशास्त्र', काशी विद्यापीठ कौस्तुभ ग्रं

पुरस्कार : १. सन् १९९१ में नामित पुरस्कार से पुरस्कृत
२. दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा कर्नाटक हिन्दी की विशिष्ट सेवा सम्मान पदक
३. बाबूराव विष्णु पराड़कर नामित पत्रकारि पुरस्कार १९९४

सम्प्रति : अध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जन-संचार विभ महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

आवास : के. वी. ई.-५, काशी विद्यापीठ परिसर, वाराणसी। फोन : (०५४२) २२२३७५